Chap-5

पंचम अध्याय

डा० धर्मवीर भारती के काव्य का शिल्प पदीय अध्ययन

:: पंचम अध्याय ::

डा0 धर्मवीर भारती के काव्य का शिल्प - पक्षीय अध्ययन

काव्य-पुरुष के प्राय: दो पक्ष होते हैं। वस्तु पक्ष और शिल्प या कला-पक्ष। प्रथम का सम्बंध काव्य के भीतरी या आत्म-पक्ष से होने के कारण उसे अंतरंग तथा द्वितीय का सम्बन्ध उसके बाहरी पक्ष शरीर की रूप-रचना आदि से होने के कारण बहिरंग भी कहा गया है। प्राय: शिल्प, शैली, अभिव्यंजना एवम् रूपादि शब्द-संज्ञाओं से काव्य के बहिरंग का बोध होता है। इसके अध्ययन के द्वारा किसी भी कवि की कलात्मक प्रतिभा को देखा-परखा जा सकता है। कवि का स्तर साधारण मनुष्य के स्तर से भिन्न होता है। वह अधिक संवेदनशील, वाग्विदग्ध एवं बौद्धिक चेतना सम्पन्न प्राणी है। अतएव वह अपने अनुभूत सत्यों या तथ्यों का केवल कोरा अंकन कर अपनी लेखनी को धन्य नहीं मानता, अपितु उन्हें और भी अधिक सम्प्रेषित, रसग्राह्य एवं रमणीय रूप प्रदान करने के लिए अभिव्यंजना-शिल्प अथवा कला के विभिन्न उपादानों यथा भाषा-शैली, अलंकार, बिम्ब-प्रतीक, छंद व रूपादि का सम्यक् और सुष्ठु प्रयोग भी करता है। वस्तुत: काव्यात्मक अभिव्यंजना के इन्हीं तत्वों की रचना-प्रक्रिया में कवि-प्रतिभा निवास करती है। जिस किसी कवि की कलात्मक वा शैली-शिल्प दृष्टि जितनी अधिक सूक्ष्म, सजीव एवं विवेक युक्त होगी उसका काव्य उतने ही रूप में सफलता का पर्याय होगा।

इससे यह स्पष्ट है कि काव्य में कवि के आकारहीन भावों या विचारों को मूर्तरूप प्रदान करने में तथाकथित अंगों का अपना निजी महत्व है, अस्तु इनकी नितान्त उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन्हीं के माध्यम से किसी भी काव्य के मर्मस्थित रस या भावों के सौन्दर्य तक पहुंचा जा सकता है। वस्तुत: पाठक या आलोचक अभिव्यक्ति के माध्यम से ही कवि के अन्तर्जगत् में प्रवेश करता है। अतएव कहा जा सकता है कि काव्य

की प्रभाव-क्षमता का मूलाधार अभिव्यंजना शिल्प ही है। इस दृष्टि से दोनों ही पक्ष परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। काव्य में शिल्प और वस्तु के परस्पर सम्बंध रूप का होना आवश्यक है, अन्यथा 'शिल्प का अत्यधिक आग्रह वस्तु के भीतर निहित सौंदर्य को नष्ट कर देता है और उसमें केवल आलंकारिक आग्रह ही शेष रह जाता है।'[1]

यह अवश्य है कि शिल्प-प्रक्रिया वस्तु के गर्भ से ही अपना आकार-प्रकार ग्रहण कर कुशल कवि के द्वारा सशक्त अभिव्यक्ति प्राप्त कर लेती है। वस्तु के बदलते ही उसके शिल्प में भी तदनुरूप परिवर्तन आ जाता है। स्वातंत्र्योत्तर कवियों की रचना-प्रक्रिया का मूलाधार प्राय: अचेतन मनोव्यापार है। सूक्ष्म व जटिलता भावों की अभिव्यक्ति के लिए परंपरा-विनिर्मुक्त नव्य शिल्पगत प्रयोगों की आवश्यकता ने ही इन कवियों को नई दृष्टि प्रदान की है। इसीलिए प्रयोगों की आवश्यकता पर बल देते हुए अज्ञेय जी का कथन है कि 'अधुनातन जीवन की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति और उनका सम्प्रेषण ही प्रयोग का कारण है। साधारणीकरण के लिए प्रयोग केवल भाषा में ही नहीं शिल्प में भी उतर आता है और यह मूलभूत रूप में सम्प्रेषण-तंत्र में सुधार और परिवर्द्धन ही है।[2] पाश्चात्य विचारक कामू सार्त महोदय ने भी युगानुकूल नव शिल्पात्मक प्रयोगों की आवश्यकता पर अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है -- अनुभूत सौंदर्य को उसके कलात्मक रूप में प्रस्तुत करने की आकुलता, मूलभूत रूप में शिल्प के अनुसंधान का कारण है। यहां कलाकार का मूल उद्देश्य सुन्दर को अधिक बारीक और कोमल यानी अधिक संवेदनात्मक बनाता है।'[3]

---

1. Beauty would be effacted and only its ornamentation would remain(Satre: Essay in Aesthetic,Page-76.
2. अज्ञेय : आत्मनेपद, पृ0 37
3. The fundamental purpose of experimentation is to give to beauty a finer grain, a firmer and richer consistency- The artists sole concern ought to be art-Satre:Essay in Aesthetic, Page-75.

डा0 धर्मवीर भारती जी ने भी यत्र-तत्र अनुभूति पक्ष की भाँति ही अभिव्यक्ति के विभिन्न शैल्पिक प्रयोगों की आवश्यकता एवं महत्व पर अपने विचार प्रदर्शित किये हैं। इस दृष्टि से उनके कुछ महत्वपूर्ण विचार यहाँ अवेक्षणीय हैं।

(1) एक सफल कलाकार को कला की बाह्य अभिव्यक्ति को उतनी ही सूक्ष्मता से ग्रहण करना पड़ता है जितनी सूक्ष्मता से वह अपनी अनुभूति को करता है।[1]

(2) साहित्य के लिए टेक्नीक की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है।[2]

(3) सिर्फ इतना जानता हूं कि साधारण शिल्प में भी जाने कितनी चीजें होती हैं जो मिलकर गति का, रंग का, वैविध्य का आभास देती हैं।[3] तथा

(4) जब कवि जीवन का आस्वादन करता है तो उसे कितने ही स्पन्दन-संवेदन मिल जाते हैं जिनके लिए उसे एक नई अभिव्यंजना की खोज करनी पड़ती है।[4]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि डा0 भारती जी ने अनुभूति या सूक्ष्म कथ्य की सफल अभिव्यक्ति का आधार तदनुरूप शिल्प-प्रयोग-विधि को ही माना है। वे काव्य के दोनों ही पक्षों को उनकी आन्तरिक एकता के स्तर पर ही स्वीकार करते हैं।

1- डा0 भारती : प्रगतिवाद : एक समीक्षा- पृ0 126
2- ,, वही- पृ0 127
3- ,, पश्यन्ती पृ0 5
4- सं0 अज्ञेय `दूसरा सप्तक- वक्तव्य- पृ0 178-179

डा0 भारती जी ने अधुनातन हिन्दी काव्य-साहित्य को नवीन कथ्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से अपना विशेष योगदान प्रदान किया है। यही कारण है कि आधुनिक समीक्षकों में वे अपने अभिनव शिल्प-शैलीगत प्रयोगों के कारण बहुचर्चित व बहुप्रिय हो पाए हैं। 'भारती जी ने काव्य-भाषा के सभी उपकरणों- संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण के साथ ही अलंकार, प्रतीक आदि की बिम्ब-विधायिनी सम्भावनाओं का पूरा दोहन किया है।'[1]

अस्तु,यहां हम ऊपर निर्दिष्ट अभिव्यंजना-शिल्प के विभिन्न उपकरणों के आधार पर डा0 भारती जी के काव्य का पर्यविलोचन करेंगे।

1- <u>भाषा-सौष्ठव :</u>

भाषा का मूलाधार शब्द है। काव्य में विषय, भाव एवं पात्र आदि के अनुकूल शब्दों का समुचित प्रयोग करने से काव्य-भाषा का जन्म होता है। बार-फील्ड महोदय के विचारानुसार- 'जबशब्दों का चयन और नियोजन इस प्रकार से किया जाए कि वह सौंदर्य तत्वात्मक कल्पना को जाग्रत करे या जाग्रत करने की चेष्टा करे तो इस चयन के परिणाम को काव्यात्मक शब्द-समूह कहा जाएगा।'[2] अधुनातम कवियों ने काव्य में शब्द के महत्व पर अधिक बल दिया है। इस संदर्भ में अज्ञेय जी का कथन ध्यातव्य है - 'नया कवि शब्द के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ उसमें भरना चाहता है। वह भाषा की क्रमशःसंकुचित होती हुई केंचुल को फाड़कर इसमें नया अधिक व्यापक और [illegible] सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है।'[3] भाषा की पुरानी केंचुल को उतार-फेंकने के पीछे नयी संवेदना,

---

1- सं0 लक्ष्मण दत्त गौतम- 'धर्मवीर भारती में- डॉ0 हरिश्चंद वर्मा का लेख- बिम्ब-विधान-पृ0 166

2- पोएटिक डिक्शन, पृ0 41

3- अज्ञेय- तारसप्तक- पृ0 276

नया जीवन-बोध कारणभूत है। भाव-बोध की इसी प्रतीति ने भाषा-शिल्प के नये मुहावरों को जन्म देकर अभिव्यंजना की सम्प्रेषणात्मक शक्ति को बढ़ाया है। इस दृष्टि से तथाकथित नई अभिव्यंजना-प्रणाली अत्याधुनिक यथार्थ-बोध को सजीव रूप दे सकी है। इस सम्बंध में डा0 भारती जी ने स्वयं अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा है - `कलाकृति चाहे वह शब्दों में हो, चाहे संगीतात्मक ध्वनियों में, चाहे वह रंगों और रेखाओं में हो या स्थापत्य में-----किन्तु उससे कलाकार के अन्तर्जगत् का निकटतम सम्बंध रहता है। कलाकार के अन्तर्जगत् में घटित होनेवाली इस सृजन-प्रक्रिया का मूल अन्त:प्रेरणा है।`[1] भाषा का प्रथम व मूल उद्देश्य काव्य-सौष्ठव की अभिवृद्धि करना है, कवि अपने काव्य में शब्दों के समुचित व्यवहार या प्रयोग द्वारा ही अपने भीतर घटित, भावों का सम्मूर्तिकरण करता है। अत: भाव-संवाहक भाषा की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है- `भाषा भाव की पूर्ण अनुगामिनी रहनी चाहिए, बस न तो पत्थर का ढोंका बनकर कविता के गले में लटक जाए और न रेशम का जाल बनाकर उसकी पांखों में उलझ जाए`[2] डा0 भारती जी ने नवीन भाव-बोध के अनुरूप अपनी भाषा-शैली का रूप निर्माण करने के लिए नूतन बिम्बों, प्रतीकों, विविध शब्द-प्रयोगों, व नूतन कल्पनाओं का व्यवहार किया है। अत: सर्व प्रथम उनकी शब्द-प्रकृति पर विचार करना समीचीन होगा।

शब्द-समूह(शब्द सम्पत्ति) :

शब्दों के विविध स्रोत की दृष्टि से उनके काव्य में प्रयुक्त शब्दों को पांच वर्गों में रखा जा सकता है।

1- मानव मूल्य और साहित्य- पृ0 156

2- [illegible]

2- अज्ञेय- `दूसरा सप्तक-वक्तव्य-भारती- पृ0 108-109

(1) तत्सम (2) तद्भव (3) देशज (4) विदेशी एवम् (5) अनुकरणमूलक।

तत्सम :

डा० भारती जी के काव्य में तत्सम शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है किन्तु वे अति कर्ण-कटु, क्लिष्ट एवं अप्रचलित नहीं है। उनका सहज-स्वाभाविक और विषयानुकूल रूप ही लक्षित होता है। कहीं-कहीं तत्सम शब्दों का सामासिक एवं संधि समन्वित रूप का आग्रह भी उनकी तत्सम प्रधान शब्दावली में दृष्टिगत होता है। अत: कुछ शब्दगत उदाहरण दृष्टव्य हैं : प्रार्थना, तमस, कुसुम, मनसिज, अम्बर-गंगा, जलजात, प्रेम-संलाप, सुप्त-अंकुर, प्रत्यंचा, विश्राम, प्रत्याशा, शरदातप, गरल, अभिषेक[1], अनावृत, अन्तोगत्वा, मणि-शय्या, प्रणयोन्माद, गत्यावरोध, परिशोधित, पन्थ, मुद्रा-मंजूषा, मर्म-स्थल, सुखप्रद, जल-निमग्ना, निर्वसना, कामातुर[2] निर्लिप्त, निर्व्यास्था, निभृत, परिव्याप्त, दिग्वधू, प्रसुप्त, प्रलयशून्य, आश्लेष्य, अलंघ्य, अवगुण्ठन, शिर-स्त्राण, योगेश्वर, अभिमन्त्रित, केलिसखी, अग्निपुष्प[3], लोमहर्षक, भयावह, मनोबुद्धि, मातुल, उन्नत-ललाट, श्वेतकेशी, भविष्यवत्, मातुल, मातृ-वंचित छद्मवेश, मरणासन्न, वल्कल, आरूढ़, विकलांग, व्याघ्र, दुर्विनीत, नामक, निरापद[4] आदि। उपर्युक्त तत्सम शब्दों का काव्य में यथा-स्थान सटीक प्रयोग हुआ है।

1- ठण्डा लोहा- पृ० 2, 2, 9, 21, 21, 31, 36, 49, 55, 66, 67, 83, 85, 90

2- सात गीत वर्ष- पृ० 17, 23, 32, 33, 37, 46, 66, 75, 81, 95, 107, 115, 120

3- कनुप्रिया (च०सं० 1972)-पृ० 14, 21, 29, 36, 37, 43, 43, 57, 60, 73, 73, 75, 76 79, 79

4- अंधायुग- पृ० 14, 16, 22, 24, 25, 25, 28, 40, 61, 62, 85, 93, 94, 95, 102, 107, 115, 116

तद्भव :

जन सामान्य के प्रयत्न लाघव द्वारा संस्कृत के तत्सम शब्दों का विकृत रूप ही तद्भव रूप में परिवर्तित हो जाता है। छायावादी काव्य में तत्सम शब्दों की अत्यधिक प्रधानता है। किन्तु तदुत्तर काव्य-भाषा आधुनिक भाव-बोध की अभिव्यक्ति के लिए जन सामान्य के अत्यधिक निकट होने का प्रयास करती है। यह बात दूसरी है कि सूक्ष्म व जटिल भावों की अभिव्यक्ति के लिए उसने प्रतीकात्मक व मनोवैज्ञानिक भाव-निरूपक शैली को आत्मसात् किया है किन्तु इससे उसका अभिप्राय भाषा में अकृत्रिमता व स्वाभाविकता को उत्पन्न करने का ही प्रयास करता है। इस प्रयास में तद्भव शब्दों की आवश्यकता अनायास ही प्रतीति हुई है। डा० भारती जी का काव्य भी उक्त तथ्य का अपवाद नहीं है। उनके काव्य में प्रयुक्त तद्भव शब्दों से भाषा की गत्यात्मकता व प्रांजलता के साथ ही भावों का सौन्दर्य भी अभिवर्द्धित हुआ है। कुछ तद्भव शब्द दृष्टव्य हैं : चांद, सांप, होठ, पांख, नींद, नेह, मरजाद, सूरज, पांत, लाज, सिंगार, दीठ, आखर, काम-काज, क्वांरी , बूढ़ा[1], गिद्ध, आग, माथ, दक्खिन, गांठ, रात, बिजली, मुट्ठी, सांस, बौना, घांरी, उजली[2], इसी प्रकार दुपट्टा, कछुआ, थम(स्तम्भ), सांझ, उंगलियां, ढीठ, फांद आदि तद्भव शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। `कनुप्रिया` तथा `अंधायुग` में भी छौने, फन, बूंद, कनु, सलाखा, जांघे, जीभें, चबाना, गेहूं, आदि जैसे अनेक तद्भव शब्दों का जाल बिछा हुआ दृष्टिगत होता है।

देशज एवं ग्राम्य शब्द :

'इस शब्द से तात्पर्य है वह शब्द जो न संस्कृत का हो न संस्कृत का अपभ्रंश ही हो बल्कि किसी प्रदेश में लोगों की बोल-चाल से यों ही उत्पन्न हो गया

1- ठण्डा-लोहा- पृ0 1, 1, 2, 3, 10, 10, 11, 12, 14, 21, 24, 27, 35, 61, 67, 81

2- सात गीत वर्ष- पृ0 22, 26, 35, 35, 63, 66, 68, 115, 117, 124, 126 ।

हो ।'[1] डा0 भारती जी के काव्य में देशज शब्दावली का प्रयोग अनेक स्थानों में हुआ है। इससे उनमें लोक चेतना या जन संस्कृति को आत्मसात् करने की प्रवृत्यात्मक वृति का सहज ही परिचय प्राप्त हो जाता है। अतः कुछ देशज शब्द उदाहरणीय हैं - ठंड़ा, सन्नाटा, अल्हड़, झुरमुट, झोंका, सेज[2], चट्टान, कोहरा, झूठा, कड़ियां, छलांग, झाड़, बगल, थैली[3], छिपाना, लौटते, टीसती, डालियों, भेंट, जकड़ना, उजाड़ना, बटोरना, चौंकना, हिचक[4], दहाड़ता, कलाई, भटक(ना), छुटकारा, थूक, दबोचना, गंदले, करवट, झाड़ी, पहाड़, कटोरे, ठोकर, धक्को, बिखेरना, खोखली, पछाड़, बुझ(ना), खोटा[5] आदि। डा0 भारती के काव्य में ग्रामीण शब्दों के अत्यधिक प्रयोग ने भी काव्य-भाषा की मिठास को बढ़ाया है। इससे उसमें कहीं भी गत्यावरोध उत्पन्न नहीं हुआ है। इस दृष्टि से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं - पुरवैया, छितरा(ना), अम्बवा, रंभाना, डगरिया, हुमच, आंखड़ियां, पोथी, निगोड़ी, सकारे, बिछली, भरमाये, व्यापी, बिजुरी, ~~बदरा~~ बदरा, कारे कारे, अरसौंही, कजरी[6], पुलिया, अन्ध्यारी, बौछार, निचाट, गुड़िया कड़ी, थाप, लंगर, कछार, मुंडेरो, ~~ए~~ गाभिन, बड़री, सुबुक, चैत, अंगुरी, सवारे[7], पोर पोर, महावर, संझा बिरिया, कुलेल, चटुल, नगर-डगर, छौने, बावरी, बैसाखियों, गलियारा, छाती, सेंदुर, रेंग(ना), बलाएं, झबजेरो[9] आदि।

1- दे0 हिन्दी शब्द सागर- का0ना0प्र0स0।

2- ठण्डा लोहा- पृ0 1, 13, 16, 21, 33, 69 ।

3- सात गीत वर्ष- पृ0 17, 28, 38, 45, 48, 65, 71, 72

4- कनुप्रिया- पृ0 13, 14, 17, 22, 25, 32, 65, 68, 75, 79 ।

5- अंधायुग- पृ0 21, 24, 31, 35, 37, 37, 39, 43, 46, 59, 74, 81, 81, 85, 113, 115, 121, 117, 124, 126

6- ठण्डा लोहा- पृ0 9, 9, 10, 10, 10, 12, 12, 12, 13, 13, 16, 19, 24, 25, 34, 34 ।

7- सात गीत वर्ष- पृ0 29, 54, 57, 75, 78, 85, 93, 93, 99, 101, 106, 111, 112, 119, 221 ।

8- कनुप्रिया- पृ0 16, 23, 27, 28, 28, 31, 35, 64, 76

9- अंधायुग- पृ0 14, 20, 24, 75, 92, 121

विदेशी शब्द :

हिन्दी में प्रचलित वे शब्द जो अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं से गृहीत हैं विदेशी कहलाते हैं। डा० भारती जी के काव्य में अंग्रेजी शब्दों का प्राय: अभाव ही है किन्तु उर्दू-फारसी के जन-सामान्य में प्रचलित शब्दों के विशेष्य -विशेषण रूपों का बहुत बार प्रयोग हुआ है। इस दृष्टि से विशेषकर 'ठण्डा लोहा' तथा 'सात गीत वर्ष' की अधिकांश रचनाओं को देखा जा सकता है। हां, कहीं-कहीं ठेठ उर्दू-के शब्दों का व्यवहार भी भावों की तीव्राभिव्यक्ति के लिए किया गया है। कुछेक स्थान के अतिरिक्त इससे कवि के भाव-संस्कार को कहीं भी ठेस नहीं पहुंची है। कुछ शब्द दृष्टव्य हैं। यथा- रंग, शमा, महताब, दर्द, बदनाम, गेसु, गुनाह, शबनमी, नज़र, नादान, इन्तिदा, ख़ुदकुशी, बेचैनी[1], करिश्मा, साबित, जेब, कदम, लमहे, गुलाब, अजनबी, जिस्म, मंजिल, जंजीर, शोहरत, सस्ता, बेकली, कैद[2] आदि। कहीं-कहीं भाषा उर्दू गर्भित हो गई है - 'क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी,

अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है,
हो चुकी है-वानियत की इन्तेहा,
आदमीयत का मगर आग़ाज बाकी है।[3]

'पुराना किला' और 'मुनादी' भी इसी प्रकार की लम्बी कविताएं हैं। 'कनुप्रिया' में जिस्म, नादान, जिद्दी, परदा, तुर्श, गुमान, जादू, याद आदि जैसे

1- ठण्डालोहा- पृ0 - 1, 3, 4, 6, 13, 15, 19, 29, 35, 38, 62, 70 73।

2- सात गीत वर्ष- पृ0- 19, 34, 35, 40, 44, 52, 53, 61, 65, 72, 73, 89, 96, 99।

3- ठण्डा लोहा- पृ0 46

शब्दों का यथा स्थान प्रयोग हुआ है। 'अंधायुग' में इस प्रकार के शब्दों का नितांत अभाव है केवल सिर्फ, वापस, तीर, जिम्मे जैसे कुछेक शब्द ही उपलब्ध होते हैं। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग नाममात्र के लिए हुआ है। शर्ट, क्रास, चेकबुक, ट्रेन, नवम्बर जैसे बहु-प्रचलित शब्द केवल दो तीन कविताओं में ही प्रयुक्त हो पाए हैं।

अनुकरण(अनुरणन) मूलक :

ये वे शब्द हैं जो वस्तुओं से उत्पन्न ध्वनियों के व्यंजक हैं। एक समान ध्वनि के वर्णों, शब्द या पदों की एकाधिक बार आवृत्ति से काव्य-भाषा में गत्यात्मकता एवं नाद-सौन्दर्य उत्पन्न होता है। डा0 भारती जी के काव्य में भाव-प्रभाव के सजीव अंकन के लिए ऐसे शब्दों का अतिशय प्रयोग किया गया है। कुछ शब्द दृष्टव्य हैं - छन-छन, गुन-गुन, चम-चम, संग-संग,[1] धीरे-धीरे, घुट-घुट[2], ठण्डी-ठण्डी, चुपचाप, लाल-लाल, डूब-डूब, चढ़-चढ़, मुड़-मुड़[3], खंड-खंड, अं-अं, कू-कू, चूर-चूर, खड़-खड़ खड़[4], आदि।

मुहावरे :

भावों को अधिक तीव्रता से व्यक्त करने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। इनमें लाक्षणिक ढंग से चमत्कार उत्पन्न करने की अधिक क्षमता रहती है। डा0 भारती जी के काव्य में लोक-प्रचलित मुहावरों का प्रसंगानुसार सन्निवेश हुआ है। कहीं-कहीं इनका प्रयोग संस्कृत की प्रकृतिपर कुछ परिवर्तन के साथ भी किया गया है। उदाहरणार्थ निम्नांकित मुहावरों का रूप अवेक्षणीय है :-

----

1- ठण्डा लोहा- पृ0 3, 4, 13, 25।

2- सात गीत-वर्ष- पृ0 - 55, 59, 103, 122

3- कनुप्रिया- पृ0 - 11, 30, 33, 58

4- अंधायुग- पृ0 26, 50, 50, 81, 121

1- हंस कर टाल जाना बात,
आंसू थाम लेना। - (ठण्डा लोहा- पृ0 11)

2- हैं ऐसी किस्मत रही कि जिसने
मुझको प्यार किया,
वह फूलों की मौत मर गया- (ठण्डा0 59)

3- शायद यही तिल-तिल कर पकना रह जायेगा-(सात0 28)

4- यह था कठपुतलों का खेल
उपर थी कलई, पर लकड़ी के थे सब
हथियार- (सात0 37)

'कनुप्रिया' एवं 'अंधायुग' में प्रयुक्त मुहावरों की प्रकृति परम्परागत न होकर विशेषत:लाक्षाणिक भाव-भंगिमा युक्त भाषा पर आधारित है। यथा-'धूल में मिली हूं', 'रेशे रेशे में सोई हूं', 'पंख पसार कर उडूंगी', 'बाहों के कलावे में कसी हुई', 'हवा मेरी', रूखी अलकों से खेलती है[1], 'चूड़ियां उतारी हैं', 'निर्मूल नहीं कर दूंगी', 'गलत धुरी में लगा था', 'लांछन पाना', 'अभिमान मेरा टूट गया'[2] आदि। उपर्युक्त मुहावरों के सटीक प्रयोग से भाषा चुस्त एवं चुटकीली बन पाई है।

शब्द प्रयोग :

काव्य में प्रयुक्त शब्दों में कवि का निश्चित अर्थ सन्निहित रहता है। शब्द-पारखी कवि अर्थ-विशेष की योग्यता सम्पन्न शब्दों का यथास्थान प्रयोग कर अपनी शब्द-चयन प्रतिभा का परिचय देता है। इससे काव्य के भाव-सौंदर्य में अपार

1- दे0 कनुप्रिया-

2- दे0 'अंधायुग'-

वृद्धि होती है। शब्द-संगुफन-कला में डा० भारती जी की सूक्ष्म दृष्टि सदैव विवेक सम्पन्न रही है। उनके काव्य में वस्तु-स्थिति के अनुरूप विशिष्ट-अर्थ-द्योतन करनेवाले शब्दों के सटीक प्रयोग में उनकी 'विशिष्ट-पद-रचना-कौशल की टेकनीक को देखा जा सकता है। कुछ उदाहरण अवेक्षणीय हैं -

(1) ओ पथ के किनारे खड़े
छायादार पावन अशोक-वृक्ष
तुम----- जन्मों से पुष्पहीन खड़े थे [1]

(2) मानो यह यमुना की साँवली गहराई नहीं है [2]

(3) कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व----
मुझ तक आते-आते सब बदल गये हैं
मुझे सुन पड़ता है केवल
राधन्, राधन्, राधन् [3]

(4) सूने खण्डहर के आस पास
मदभरी चाँदनी जगती हो [4]

(5) सुनते हो तुम किसी अवतार में कछुए थे [5]

(6) संजय तटस्थद्रष्टा शब्दों का शिल्पी है
पर वह भी भटक गया असमंजस के वन में
दायित्व गहन, भाषा अपूर्ण, श्रोता अन्धे [6]

1-	कनुप्रिया-	पृ० 11
2-	वही-	पृ० 16
3-	वही-	पृ० 73
4-	ठण्डा लोहा-	पृ० 7
5-	सात गीत वर्ष-	पृ० 81
6-	अंधायुग-	पृ० 31

उपर्युक्त पंक्तियों में रेखांकित किये गये शब्द विशेष अर्थ-गर्भित है। उदाहरण, 1 में अशोक वृक्ष से एक साथ अनेक अर्थों की व्यंजना हुई है, यथा- कृष्ण, किसी सुन्दरी के पद-चाप से उसका पुष्पित बना रहना, तथा उसके मन की कामना पूर्ण करनेवाला धार्मिक आस्थापरक प्रतीक के रूप में। 'पुष्पहीन' से राधा की कृष्णासक्ति व तन्मयता को जानने के कारण कृष्ण की खिन्नतापरक स्थिति को व्यक्त किया गया है। उदाहरण-2 में यमुना का जल नील वर्ण का होता है, कृष्ण भी श्याम हैं, राधा गौर वर्णी है किन्तु उसमें प्रतिबिम्बित या परिवर्तित अपने श्यामाकार रूप की प्रतीति के लिए 'साँवरा' शब्द बड़ा ही उपयुक्त हो पाया है। उदाहरण-3 में राध् धातु का राधन्(पु0)प्रथम पुरुष एक वचन, वर्तमान कृदन्त का रूप प्रयुक्त कर कृष्ण की राधासक्ति-अथवा नामस्मरण की तन्मयता वाले भाव को उद्दीप्त किया गया है। इसी में प्रस्तुत कृति 'कनुप्रिया' का मूल उद्देश्य भी सन्निहित है। उदाहरण-4 में नायिका के उदास मुख की सुन्दरता को व्यक्त करने के लिए 'सूने खण्डहर' व 'मदभरी चांदनी' शब्दों का प्रयोग अर्थवान है। उदाहरण-5 में विष्णु के अन्य अवतारों में से केवल 'कछुए' वाले अवतार का संकेत कर श्लिष्ट रूप से कठोरता व निर्ममता केसमान धर्म के आधार पर तद् अवतार की असार्थकता के साथ ही आज के तथाकथित निष्कर्मी व आराम परस्त नेता वर्ग के प्रतिव्यंग्य किया गया है। उदाहरण-6 में शब्दों का शिल्पी और 'अंधे' से शब्दों का बड़ी कुशलता से सारपूर्ण प्रयोग करनेवाले संजय के मन की असमर्थताग्रस्त संशयात्मक वृत्ति को व्यंजित किया गया है।

व्याकरणिक रूपों का प्रयोग :

डा0 भारती जी एक सफल प्राध्यापक भी रहे हैं। अत: उनकी काव्य-भाषा में व्याकरण-सम्मत विवेक सदैव जागृत रहा है। इस दृष्टि से कतिपय सुष्ठु प्रयोगों को देखा जा सकता है।

विशेषण :

प्रसाद की भांति ही डा0 भारती जी ने भी सुंदर, आकर्षक व कोमलकांत पदावली से युक्त एक ही विशेष्य शब्द के लिए अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है। ऐन्द्रिक संवेदनाओं के आधार पर रोमैंटिक विशेषणों का प्रयोग बड़ा ही अनूठा हो पाया है जिससे उनकी विशेषण प्रियता का सहज ही परिचय प्राप्त हो जाता है। इस दृष्टि से कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं —

(1) नींद भरी, तरलायित, बड़री
कटावदार आँखें मूंद[1]

(2) बालों में अजब सुनहरापन
झरती ज्यों रेशम की किरणें[2]

(3) आधीरात दंशभरा बाहुहीन
प्यासा सपीला कसाव एक[3]

(4) क्या हर छोटे से छोटा व्यक्ति
विकृत, अर्द्धबर्बर, आत्मघाती, अनास्थामय
अपने जीवन की सार्थकता पा जायेगा ?[4]

1- सात गीत वर्ष- पृ0 122
2- ठण्डा लोहा- पृ0 15
3- कनुप्रिया पृ0 62
4- अन्धायुग- पृ0 130

उपर्युक्त रेखांकित शब्द क्रमश: एक ही विशेष्य आँखें, बाल, कसाव, व्यक्ति और जीवन के विशेषणों के रूप में प्रयुक्त किये गये हैं। इसी प्रकार अन्य विशेषण जैसे शरद के चांद से उजल पांव(धुले हुएपांव), चम्पई वृक्ष(उरोज), मूंगिया बादल(होंठ) मदभरी अंगड़ाइयां, चन्दन-बाहें आदि हैं। कवि ने अनेक स्थानों पर वर्तमान एवं भूतकालिक कृदन्त के आधार पर भी क्रिया के विशेषण रूपों का उपयोग किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं - टूटते वृक्षों, हहराती लपटों, झूलती अलकें, रसमसाती धूप, गुनगुनाते स्पर्श, रीतते क्षण आदि। इसी प्रकार शब्दों के सामासिक रूपों के आधार पर भी चित्रलिखी सुरासी, छांहलिपी दीवार, धूपधुली छत, आँसधुला-गुच्छा, अनउगे दिन, अनबोला वाक्य जैसे रेखांकित विशेषणों को कवि ने स्वयं गढ़ने का प्रयास भी किया है।

संकेत चिन्हों के प्रयोग :

भाषा की व्यंजना को बढ़ाने के लिए डा0 भारती जी ने अनेक प्रकार के भाव-द्योतक चिन्हों, आड़ी-सीधी रेखाओं, कोष्ठकों, बिन्दु-निर्मित लकीरों, एवं अर्द्ध वाक्यों का प्रयोग किया है। इस प्रकार के कुछ चिन्हात्मक संकेतपरक प्रयोग दृष्टव्य हैं -

विदुर और यु-----[1]
बीते दिन वर्ष मास-----
----------------[2]

1- अंधायुग- पृ0 91

2- ठण्डा लोहा- पृ0 50

मैंने जो -
तीखे नुकीले - ये
पूजा के फूल नहीं
शीशे के टुकड़े हैं -[1]
तुम कब से मुझ में छिपे सो रहे थे।
सुनो, मैं अक्सर अपने सारे शरीर को -[2]
घण्टों - जल में - मैं अपने को
निहारती हूं,[3] सखा- बन्धु- आराध्य
शिशु- दिव्य- सहचर[4], सुनो मेरे
प्यार- , - छू रही मेरे शीत कपोल[5], - मेरा
यह जिस्म[6] आदि। यहाँ--- ` चिन्ह का प्रयोग अल्प विराम, सम्बोधन आदि के रूप में वाक्य के अंत, आरम्भ तो कहीं मध्य में ही किया गया है। [ ] ( ), " " जैसे बड़े छोटे कोष्ठकों एवं ` ` का प्रयोग विशेषकर `सात गीत वर्ष` एवं `कनुप्रिया` के कई स्थलों पर किया गया है। यथा- चाहे वह झूठा -----होना था?[7] (उसे मिटाते-----देता हो।)[8] तथा "मट की बेबात कहीं। लौटोगे अपनी हत्यात्रा के बाद यहीं।"[9] कहीं-कहीं पंक्तियों के नीचे अक्षरों को कलात्मक रूप से प्रयुक्त भी किया गया है - जैसे-

पर उनका अर्थ मात्र एक है -

1- सात गीत वर्ष- पृ0 83
2- कनुप्रिया- पृ0 13
3- ,, पृ0 16
4- ,, पृ0 38
5- ठण्डा लोहा- पृ0 31
6- कनुप्रिया- पृ0 57
7- सात गीत वर्ष पृ0 75
8- कनुप्रिया- पृ0 62
9- सात गीत वर्ष- पृ0 55

मैं,
मैं,
मैं
केवल मैं ?[1] । डा0 भारती जी के काव्य में हिन्दी भाषा से निर्मित नव्य क्रिया-प्रयोग भी मिलते हैं। इसके लिए निम्नन रेखांकित शब्द दृष्टव्य हैं।

(1) रिसने और रचने दो[2]

(2) बाहर ले जाती है
घण्टों बतियाती है[3]

(3) भला उस प्रमाण मात्र को क्यों स्वीकारते[4]

(4) मैंने इन सब को रीतता हुआ पाया है।[5]

अंग्रेजी शब्दों से अनूदित नये शब्द :

डा0 भारती जी में कविवर सुमित्रानंदन पंत की भांति ही अंग्रेजी शब्दों से अनूदित नये शब्दों का निर्माण कर हिन्दी की शब्द सम्पत्ति को बढ़ाने का प्रयत्न भी दृष्टिगत होता है। ऐसे शब्द काव्य-भाषा में अभद्रता उत्पन्न न कर प्रत्युत

1- कनुप्रिया- पृ0 72
2- ठण्डा लोहा- पृ0 19
3- सात गीत वर्ष- पृ0 103
4- कनुप्रिया- पृ0 16
5- वही- पृ0 29

उसके सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने में अत्यन्त सहायक हो पाये हैं। इस दृष्टि से कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं, यथा- अंग्रेजी के My Love का `मेरे प्यार`, कृष्ण के लिए अंग्रेजी शब्द Girl friend का `मित्र`, God of death का `मृत्यु-देवता` Magic Flower का `जादू का फूल`, Heavenly Song का `स्वर्ग के दो गान`, Foot Prints का `पगचिन्ह` आदि कुछ ऐसे ही शब्द-प्रयोग हैं। इसी प्रकार `तोतापंखी किरनों में हिलती बांसों की टहनी`[1] में किरणें कभी `तोतापंखी` नहीं होती कदाचित अंग्रेजी के Gream-Rays शब्द का हिन्दी रूपान्तर है।

शब्द -शक्ति :

`शब्द-शक्ति` का तात्पर्य है शब्दार्थ का वह सम्बंध या व्यापार जिसके माध्यम से निश्चित अर्थ का बोध होता है। यह शक्ति तीन प्रकार की मानी गई है - (क) अभिधा, (ख) लक्षणा और (ग) व्यंजना।

(क) अभिधा :

इस शक्ति के द्वारा शब्दों के मुख्यार्थ अथवा साक्षात् प्रसिद्ध अर्थ का बोध होता है। डा0 भारती जी की काव्य-भाषा में अभिधा का व्यवहार बहुत ही कम हुआ है। इसके लिए कतिपय उदाहरणों को देखा जा सकता है -

(1) आज खा गया बछड़ा माँ की रामायन की पोथी।
अच्छा अब जाने दो मुझको घर में कितना काम है।[2]

(-

1- ठण्डा लोहा- पृ0 30

2- वही- पृ0 12

(2) न जाने क्यों
  आज यह अपना
 बहुत परिचित बहुत प्यारा शहर
 अजनबी, अनजान, अन्यमनस्क-सा लग रहा है।[1]

(3) यह जो दोपहर के सन्नाटे में,
 यमुना के इस निर्जन घाट पर अपने सारे वस्त्र
 किनारे रख
 मैं घण्टों जल में निहारती हूँ[2]

(ख) लक्षणा :

मुख्यार्थ की बाधा होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन द्वारा जिस शब्द-शक्ति से मुख्यार्थ से सम्बंधित अन्यार्थ की प्रतीति होती है उसे लक्षणा कहते हैं।[3] रूढ़ि और प्रयोजन से गृहीत लक्ष्यार्थ के आधार पर इसके दो भेद हो जाते हैं : (अ) रूढ़ि लक्षणा और (ब) प्रयोजनवती लक्षणा। सादृश्य सम्बन्ध एवं सादृश्येतर सम्बन्ध के अतिरिक्त अन्य सम्बंध से लक्ष्यार्थ का बोध होने पर प्रयोजनवती लक्षणा के भी दो प्रमुख भेद- गौणी और - शुद्धा- हैं। इनके भी कई भेद हैं जिनका केवल संकेत मात्र आवश्यकतानुसार किया जायेगा। डा० भारती जी शब्दों के कुशल शिल्पी हैं। अत: भाषा भंगिमा से युक्त चमत्कार उप उत्पन्न करने के लिए उन्होंने अनेक स्थानों पर विशिष्ट अर्थ-संकेत गर्भित लाक्षणिक भाषा-शैली का प्रचुर प्रयोग किया है। उनके काव्य में प्राय: सभी प्रकार की लक्षणाओं का अर्थ-वैभव परिलक्षित होता है।

1- सात गीत वर्ष- पृ० 51

2- कनुप्रिया- पृ० 16

3- देखिए : काव्य-दर्पण- पृ० 21

रूढ़ि- लक्षणा :

इसमें अनेक मुहावरों का सहज ही समावेश किया जा सकता है। अपनी अभिव्यक्ति को जन-सामान्य के समीप लाने के लिए निमित्त डा0 भारती जी ने लोक-प्रचलित मुहावरों का प्रयोग किया है जिनमें लाक्षणिक अर्थ-चमत्कार की सृष्टि हुई है। यहां डा0 भारती जी के काव्य से रूढ़ि-लक्षणा के चमत्कार से सम्पन्न कुछ पंक्तियां उद्धृत की जा रही हैं :

1- जहां हाथ को हाथ नहीं सूझता था[1]

2- तुमको क्या मालूम कि मैं कितनी बार केवल
तुम्हारे लिए धूल में मिली हूं।[2]

3- यह रात गर्व में तने हुए माथों की
यह रात हाथ पर धरे हुए हाथों की[3]

4- जब तक निर्मूल नहीं कर दूंगा मैं पाण्डव वंश को[4]

5- अजब से ये रहस्यमय प्यार
लौट आते हैं बार बार
तोड़ते मन के सभी कगार[5]

1-	कनुप्रिया-	पृ0 13
2-	वही-	पृ0
3-	अंधायुग-	पृ0 48
4-	वही-	पृ0 64
5-	ठण्डा लोहा-	पृ0 32

6- उस अभागिन की अछूती माँग का सिंदूर
मर गया बनकर तपेदिक का मरीज[1]

7- चलना तो हमको ही होगा
चलने में ही हम टूटों और अधूरों का
शायद कुछ होगा नया गठन[2]

8- जब मैंने अपनी परछाहीं से बातें की[3]

उपर्युक्त उदाहरणों के रेखांकित मुहावरों का मुख्यार्थ सर्वथा बाधित है। इनका क्रमश: लक्ष्यार्थ होगा (1) प्रगाढ़ अंधकार में कुछ भी न दिखाई देना, (2) प्रेम-पात्र द्वारा की गई कठोर अवहेलना या व्यवहार द्वारा अवसाद-आक्रान्त प्रेम के जीवन का नष्ट हो जाना, (3) गर्वोन्माद एवं विवशता को प्रकट करना, (4) संपूर्ण नष्ट कर देना, (5) ऊँची आकांक्षाओं का नष्ट होना, (6) पति, (7) विघ्न-बाधाओं की चिंता न करते हुए उत्साहपूर्वक अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए निरन्तर आगे बढ़ते ही रहना आदि। प्रस्तुत लक्ष्यार्थों की सिद्धि उनके मुख्यार्थों के योग से ही संभव हो सकी है। अत: इनमें रूढ़ि-लक्षणा है। उदाहरण एक को लीजिए- हाथों की आँखें नहीं होतीं जो देखने का कारण बनें, अस्तु यहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर लक्ष्यार्थ की प्रतीति की गई है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी स्पष्ट किया जा सकता है।

1- ठण्डा लोहा- पृ0 44

2- सात गीत वर्ष- पृ0 42

3- वही- पृ0 44

(ब) प्रयोजनवती लक्षणा :

प्रयोजनवती लक्षणा वह है जिसमें किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए लक्षणा की जाए।[1] इसके दो भेद हैं - (1) शुद्धा और (2) गौणी।

(1) शुद्धा लक्षणा :

शुद्धा लक्षणा उसे कहते हैं जिसमें सादृश्य सम्बंध के अतिरिक्त अन्य सम्बन्ध से लक्ष्यार्थ का बोध होता है।[2] इसके भी दो भेद हैं -(1) उपादान -लक्षणा(2) लक्षण-लक्षणा।

(1) उपादान-लक्षणा :

जहां वाच्यार्थ की संगति के लिए अन्य अर्थ के लक्षित किये जाने पर भी अपना अर्थ न छूटे वहां उपादान लक्षणा होती है।[3] डा० भारती जी के काव्य में उपादान लक्षणा का बहुत प्रयोग हुआ है। धर्म का प्रयोग करके धर्मी की विशिष्ठता को व्यक्त किया गया है।

1- मोरपंख उससे हारेगा या जीतेगा ?[4]

2- यह पान फूल सा मृदुल बदन
बच्चों की जिद सा अल्हड़ मन।[5]

(शुद्धा सारोपा उपादान-लक्षणा)

3- कूड़े सा हमको तज कर तट के पास
मन्थर गति से बढ़ जायेगा इतिहास[6]

(शुद्धा सारोपा उपादान लक्षणा)

1- काव्य-दर्पण- पृ० 23
2- वही- पृ० 24
3- वही- पृ० 24
4- अंधायुग- पृ० 77
5- ठण्डा-लोहा- पृ० 26
6- सात गीत वर्ष- पृ० 33

1 मोरपंख न तो अपने आप हार सकता है न जीत ही सकता है अत: मुख्यार्थ का बाध हुआ। परन्तु धार्यधारक सम्बंध के आधार पर उससे लक्ष्यार्थ की उपपत्ति होती है श्रीकृष्ण की हार अथवा जीत। यहां मुख्यार्थ का पूर्णरूप से तिरस्कृत नहीं किया गया है। अत: शुद्धा उपादान लक्षणा हुई। इसी प्रकार उदाहरण 2 में उपमेय मृदुल बदन एवं अल्हड़ मन पर आरोप्यमान विषय पान-फूल और बच्चों की ज़िद का आरोप किया गया है। अत: सारोपा लक्षणा है। आरोप्य विषयों ने अपने प्रकृत अर्थ का सर्वथा परित्याग नहीं किया है किन्तु उनसे गृहीत लक्ष्यार्थ है बदन की अतिशय मृदुलता, मसृणता और मन का अतिशय अल्हड़पन। अत: यहां शुद्धा सारोपा उपादान लक्षणा उत्पन्न हुई है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा :

इसमें मुख्यार्थ का पूर्ण परित्याग होता है। यथा- 'पेट में आग लगी है' का लक्ष्यार्थ होगा बहुत ही भूख लगी है। इसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :

1- मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूं
लेकिन मुझे फेंको मत।[1]

2- आंधी सी थी जो निकल गई
शेष रहे उखड़े बिरवे, टूटी डार।[2]

3- अभी अभी यौवन ने ली है अलसांही अंगड़ाई
जैसे सावन की बूंदों से घायल हो पुरवाई[3]

1. मैं अर्थात् अभिमन्यु रथ का टूटा पहिया नहीं हो सकता अत: यहां मुख्यार्थ का पूर्ण तिरस्कार किया गया है। किन्तु इससे बोधित लक्ष्यार्थ है खण्डित व लघु जीवन या

1- सात गीत वर्ष- पृ0 79
2- ,, पृ0 57 (शुद्धा साध्यवसाना(ल0ल0)
3- ठण्डा लोहा- पृ0 24

अस्तित्व । लक्षणा सादृश्य के आधार पर नहीं अत: शुद्धा है। 'मैं' प्रस्तुत विषय पर आरोप्यमान विषय 'टूटा हुआ पहिया' में अभेद कथित किया गया है अत: शुद्धा सारोपा लक्षण-लक्षणा की उपपत्ति हुई है। इसी प्रकार 3 में अरसौंही अंगड़ाई लेना, घायल हो जाना आदि विशेषताएं यौवन की नहीं है। यहां मुख्यार्थ अपने स्वरूप को छोड़कर लक्ष्यार्थ किसी रूपसी नायिका के यौवनोन्माद को सूचित करता है। अत: शुद्धा लक्षण-लक्षणा है। शुद्धा लक्षणा के कुछ अन्य उदाहरण और भी यहां दिए जा रहे हैं :

1- गुलाबी पांखुरी पर एक हल्की सुरमई आभा
कि ज्यों करवट बदल लेती कभी बरसात की दोपहर[1]
(शुद्धा साध्यवसाना ल०ल०)

2- ये फसलें काटो----
पिछले जमाने में बीज बोये विषमता के
आज वही सांपों की खेती उग आयी है।[2]

3- दर्पणों में चल रहा हूं मैं
चौखटों को छल रहा हूं मैं।[3] (शुद्धा साध्यवसाना)

4- अपने हल्के-फुलके उड़ते स्पर्शों से मुझको छू जाती है
जार्जेट के पीले पल्ले सी यह दोपहर नवम्बर की[4]

5- दुपहर होते होते हिल उठा नगर[5]

1- ठण्डा लोहा- पृ० 18
2- सात गीत वर्ष- पृ० 69 (शुद्धा सारोपा ल०ल०)
3- वही- पृ० 62) ,,
4- वही- पृ० 27 (शुद्धा सारोपा उपादान लक्षणा
5- अंधायुग- पृ० 49 (शुद्धा उपादान लक्षणा)

6- मैं अपनी वृद्ध अस्थियों पर
सत्य धारण करूँगा।
और अग्नि माला सा।[1] उदाहरण 1 और 3 में प्रस्तुत विषय (होंठ, मुस्कान एवं सामाजिक रूढ़ियाँ) का लोप कर रेखांकित आरोप्यमान विषयों का गुण कथन होने से साध्यवसाना है। उनके मुख्यार्थों की पूर्णतया अवहेलना होने से शुद्धा लक्षण -लक्षणा हुई है।

(2) गौणी लक्षणा :

गौणी लक्षणा उसे कहते हैं जिसमें सादृश्य-सम्बंध से अर्थात् समान गुण या धर्म के कारण लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाए।[2] इसमें भी दो परस्पर भिन्न वस्तुएं सादृश्य सम्बंध के कारण अभेद का अवबोध कराती हैं। निम्नांकित उदाहरणों में गौणी लक्षणा की सुंदर सृष्टि हुई है :

1- भौंहों में इन्द्रधनुष उज्ज्वल
अलसित पलकों की छाया में घनघोर घटा बिजली बादल।
नज़रों में ताजे फूल खिले
गति में शत झंझावात चले[3]

2- वे सब बीमार हैं
वे जो उन्मादग्रस्त रोगी से
मंचों पर जाकर चिल्लाते हैं।[4]

1- अंधायुग- पृ0 115 (शुद्धा साध्यवसाना ल0ल0)
2- काव्य-दर्पण- पृ0 23
3- ठण्डा लोहा- पृ0 30
4- सात गीत वर्ष- पृ0 70

3- आर ये उत्तुंग हिमशिखर
मेरे ही - रूपहली ढलान वाले गोरे कन्धे हैं
आर यह चांदनी में हिलोरें लेता हुआ महासागर
मेरे ही निरावृत जिस्म का उतार- चढ़ाव है[1]

† †

4- अक्सर मेरे पूर्ण-विकसित चन्दन-फूलों को
ढक देते हो।[2]

2. उपमेय वे अर्थात् मिथ्या भाषण देनेवाले जन-नेता, पर उपमान (आरोप्यमान विषयी) उन्मादग्रस्त रोगी का अभेद आरोप कथित किया गया है अत: सारोपा है। दोनों में चिल्लाना, अनर्गल जल्पते रहने का गुण समान है अत: यहाँ गौणी सारोपा लक्षणा हुई है। इसी प्रकार 3 में राधा के गोरे कन्धे व निरावृत जिस्म पर आरोप्यमान विषय 'उत्तुंग हिम-शिखर', 'हिलोरें लेता हुआ महासागर' का अभेद आरोप किया गया है। इनमें समान धर्म वा गुण 'रूपहली ढलान' एवं 'उतार-चढ़ाव' है अत: यहां भी गौणी सारोपा लक्षणा हुई है। 4 में उपमेय (राधा जी के सुंदर विकसित वक्ष) का कथन न कर केवल उपमान 'चन्दन-फूलों को' प्रस्तुत किया गया है जिससे उक्त लक्ष्यार्थ की प्रतीति होती है। अत: इसमें गौणी साध्यवसाना लक्षणा हुई है। 'कनुप्रिया' के अधिकांश स्थलों पर गौणी सारोपा लक्षणा की सुंदर योजना की गई है।

(ग) व्यंजना :

अभिधा और लक्षणा के द्वारा अपने-अपने अर्थ का बोध करा करके विरत हो जाने पर जिस शब्द और अर्थ आदि की शक्ति द्वारा कवि के अभिप्रेतार्थ की प्रतीति होती है उसे व्यंजना शक्ति कहते हैं।[3] व्यंजना की सत्ता शब्द और अर्थ दोनों में संभव

1- कनुप्रिया- पृ0 45

2- ,, पृ0 45

3- विरतास्वभिधाद्यासु ययाऽर्थो बोध्यते परः ।।
सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च ।
- साहित्य-दर्पण, 2। 12-13

होती है। अत: इस दृष्टि से उसके दो भेद हो जाते हैं : (अ) शाब्दी व्यंजना और (ब) आर्थी व्यंजना। यहां संक्षेप में व्यंजना के कुछ रूपों की चर्चा की जा रही है।

(अ) शाब्दी व्यंजना :

शाब्दी व्यंजना में व्यंग्यार्थ का बोध करानेवाले अनेकार्थ शब्दों में से, समीपता साहचर्य, प्रकरण, सामर्थ्य आदि सम्बन्धों के कारण किसी एक अर्थ को व्यंजित किया जाता है। इसके कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं :-

1- वे आशुतोष हैं
हाथ उठाकर बोले
मैं कृष्णा-प्रेमवश अब तक इनकी रक्षा करता था।[1]
(प्रकरणगत व्यंजना)

2- जन्मों जन्म की अधूरी कामना, पूर्ण होती है
किसी मधु-देवता की बाह में।[2]
(सामर्थ्यगत व्यंजना)

3- दिन की ढलती रेशम-लहरें थम जाती हैं।[3]
(शब्दांतर सन्निधिगत व्यंजना)

1, आशुतोष, और कृष्णा के क्रमश: शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शंकर, गणेश, और द्रौपदी, राधा, श्याम वर्ण की, आकर्षित करनेवाली आदि अनेक अर्थ हैं। किन्तु शंकर जी और अश्वत्थामा के प्रकरण से उनका क्रमश: अर्थ शिव जी और द्रौपदी ही लिया जायेगा, द्रौपदी से इसलिए कि द्रौपदी केपतिपरायणा होने के कारण वे अब तक पाण्डवों की रक्षा करते रहे थे। 2, यहां चमत्कार का केन्द्र 'मधु' और 'देवता' शब्द हैं।

1-	अंधायुग-	पृ0 80
2-	ठण्डा लोहा-	पृ0 6
3-	सात गीत वर्ष-	पृ0 89

मधु के अनेक अर्थ हैं - शहद, मध, पुष्परस, वसंतऋतु आदि, इसी प्रकार `देवता` के भी अग्नि, इन्द्र, ईश्वर दिव्य पुरुष आदि अर्थ हैं । किन्तु इनके `बांह` के साथ प्रयुक्त होने से उक्त पदार्थों के नामधारी अन्य पदार्थों का निराकरण हो जाता है। अत: इनसे किसी सुंदर व्यक्ति का अर्थ व्यंजित होता है। 3. `लहर` के जल की तरंग, मुर्च्छा, तंद्रा, किरण आदि अनेक अर्थ हैं। इसी प्रकार `थम` शब्द के स्तम्भित होना, रुकना, शांत होना आदि अनेकार्थ हैं। किन्तु इनके समीपवर्ती शब्द `दिन` शब्द से प्रतिपादक शब्दों के व्यंग्यार्थ की प्रतीति सूर्य की किरणों के अस्त होने के रूप में ही होती है। ऊपर अभिधामूलक शाब्दी व्यंजना पर विचार किया गया है। लक्षणामूलक शाब्दी व्यंजना का आधार लाक्षणिक शब्द होने से प्राय: प्रयोजनवती लक्षणा के जितने भेद और उदाहरण हो सकते हैं उनका समाहार लक्षणामूलक शाब्दी व्यंजना में किया जा सकता है।प्रयोजनवती लक्षणा के प्रकरण में इसका विचार किया जा चुका है।

(ब) आर्थी व्यंजना :

प्रतीत अर्थ के अतिरिक्त जो शक्ति वक्ता, बोधव्य, काकु आदि के द्वारा जिस एक अर्थ की प्रतीति कराती है उसे आर्थी व्यंजना कहते हैं।[1] डा0 भारती जी के काव्य में आर्थी व्यंजना के अर्थ वैभव के दर्शनार्थ यहां केवल कुछ उदाहरण ही उद्धृत किये जा रहे हैं :-

1- लतरों की ताजे फूलों पर
भंवरों की ताजी भूलों पर
बुनता है कोई प्रेम-सपन ।[2]
(वक्तृ वैशिष्ट्योत्पन्न)

1- काव्य प्रकाश- 3। 21-22

2- ठण्डा-लोहा- पृ0 20

(2) या दीप गुल होगा, उत्सव थम जायेगा
गीतों की सब कड़ियां, सिसकी में टूटेंगी [1]
(बोधव्य वैशिष्ट्योत्पन्न)

(3) यमुना के घाट पर मछुओं ने अपनी नावें बांध दीं
और कंधों पर पतवारें रख चले गये [2]
(कालवैशिष्ट्योत्पन्न)

(4) और दर्द उस लिपि के अर्थ खोलता रहा है
जो तुमने मांग पर लिख दी थी [3]
(वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्न)

(5) मेरी ये पुतलियां बिन दांतों के चोथ खायें
पाये जिसे ! [4] (वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्न)

(6) 'कुछ भी क्या देख सके अब तक वे'? [5] आदि ।
(काकु वैशिष्ट्योत्पन्न)

1 नायक की उक्ति नायिका के प्रति है । लतरों के ताजे फूलों और भंवरों की ताजी भूलों का प्रसंग वाच्यार्थ है । व्यंग्यार्थ है निसंकोच, बिना लाज या भय के स्वच्छंद रूप से प्रेम करना । यहां आक्षिप्तार्थ वक्ता की विशेषता के कारण संभव हो सकता है । 4 चोथ खाने का काम दांतों का है पुतलियों का नहीं । अश्वत्थामा का

1- सात गीत वर्ष- पृ0 86
2- कनुप्रिया पृ0 22
3- वही- पृ0 30
4- अंधायुग- पृ0 38
5- वही- पृ0 17

उक्त कथन 'पाये जिसे' अर्थात् पाण्डवों के प्रति है। इन अर्थों से उत्पन्न होनेवाला व्यंग्यार्थ है अश्वत्थामा के पाशविक वृत्तियों का आचरण करना, राक्षस सदृश व्यवहार करना। 2 यहाँ वैभव-सम्पन्न जीवन की अत्यंत दुखद परिणति का बोध व्यंजित हुआ है, 3 'मछुओं ने---बांध दी' और 'कंधों पर--- गये' के निमित्त से संध्या होते तक कृष्ण द्वारा राधा की निष्फल प्रतीक्षा के काल सापेक्ष वैशिष्ट्य का परिज्ञान होता है। 6 कुछ भी--- वे' की बदली हुई कंठ-ध्वनि से जिस अन्य अर्थ की प्रतीति होती है वह है गांधारी व धृतराष्ट्र का अंधों के अतिरिक्त 'विवेकहीन' भी बने रहना। उन्हें अपने पुत्रों के प्रति इतनी मोहान्धता है कि वे उनके बिना और कुछ भी नहीं देख सकते। भाव यह है कि उन्होंने जब तक कुछ देखा ही नहीं है तो इस विनाश की अपशकुन सूचक घटना को भला कैसे देखें। उन्हें घटना सुनाना व्यर्थ है।

उपमान-विधान एवं अलंकार-विन्यास :

स्वातंत्र्योत्तर काव्य जीवन के यथार्थ का काव्य है। अत: इसमें युग के नवीन परिप्रेक्ष्य के अनुकूल वस्तु एवं शिल्प दोनों में नवीनता का आग्रह अत्यधिक है। आधुनिक विज्ञान, तकनीकी उपकरणों, औद्योगिक क्रान्तियों, युद्धों व पश्चिमी सभ्यता के प्रभावों ने अधुनातन कवियों को नये उपमानों का क्षेत्र प्रदान किया है। साथ ही पौराणिक व ऐतिहासिक प्रतिमान भी जीवन के नये संदर्भों की अभिव्यक्ति में अत्यन्त सहायक हो सके हैं। "हिन्दी की नयी कविता अप्रस्तुत विधान के लिए उन बहुतेरे उपकरणों का चयन करती है जो वैज्ञानिक सभ्यता के फलस्वरूप हमारे जीवन से एक रस हो गये हैं।"[1] यही कारण है कि आज के कवियों ने जीवन के अनेक क्षेत्रों से नवीन उपमानों का चयन कर काव्य को जीवन के निकटतम लाने का सुप्रयास किया है। डा० भारती जी का काव्य भी उक्त तथ्य का अपवाद नहीं है। गुण एवं प्रभाव साम्य के आधार पर

1- डा० कान्तिकुमार- नयी कविता-पृ० 264

काव्य-वस्तु में यथेष्ट प्रभाव उत्पन्न करने की दृष्टि से डा0 भारती जी को नये उपमानों की योजना में काफी सफलता प्राप्त हुई है। उनके काव्य में प्रयुक्त प्राकृतिक पौराणिक-ऐतिहासिक, कलात्मक, जीवन की क्रिया-कलापों व पदार्थों से संदर्भित वैज्ञानिक-मनोवैज्ञानिक आदि नये उपमानों के विविध रूपों की सृष्टि हुई है। इसके लिए कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

प्राकृतिक उपमान :

'नया रस' कविता में 'प्रश्न-चिन्ह' (उपमेय) के लिए जहरीले अजगर के उपमान से हृदय-स्थित व्याकुलता की भयंकरता को व्यंजित किया है। नवम्बर की दोपहर के लिए 'आलिंगन में घायल फूलों की माला' चैत के एक दिन को 'सूरज में धुल नहाये हुए नीले कमल' सा 'देह के लिए' बौर लदी नाजुक टहनी' 'जाड़े की शाम को 'यम की चिड़िया सी' आदि के नये रूपों में उपमित किया है। प्रायः शरीर के विविध अंगों के सौन्दर्यांकन के लिए प्राकृतिक उपकरणों का उपयोग किया है। जिससे डा0 भारती जी की रोमैण्टिक दृष्टि-कल्पना का सहज ही परिचय मिल जाता है। कहीं प्रकृति वर्णन के लिए मानव जीवन से भी अप्रस्तुतों का चयन किया गया है - यथा- 'झील' को 'सुहागन गोद में सोये हुए नवजात शिशु के नेत्र सी', 'दोपहर' को 'क्वारेपन के कच्चे छल्ले पे सी', 'सन्नाटे' को 'गूँगे के अनबोले वाक्य सा' कहा है।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि डा0 भारती जी ने प्रकृति के लिए प्रकृति, मानव जीवन के लिए प्रकृति, व प्रकृति के लिए मानव जीवन से नये उपमानों का परिग्रहण किया है। 'धुंधली नदी में' जिन्दगी (उपमेय) के लिए 'रंग लिखी सुरा सी' कलात्मक उपमान है। पौराणिक-ऐतिहासिक उपमानों में विशेषकर 'अंधायुग' के कृष्ण, अश्वत्थामा, गांधारी-धृतराष्ट्र, संजय, आदि महाभारतीय पात्र प्रतीकात्मक उपमान हैं। इसी प्रकार 'प्रमथ्यु', 'बृहन्नला', 'बाणभट्ट' 'टूटा हुआ रथ का पहिया' आदि पात्र व प्रकरणगत उपमानों से आधुनिक जीवन के संदर्भों की मार्मिक

अभिव्यक्ति की गई है। इसका विस्तृत विचार हम प्रतीक-प्रकरण में करेंगे। इसी प्रकार मानव जीवन के बोध के लिए भी डा0 भारती जी ने अन्य पदार्थों से नये उपमानों का चयन किया है। यथा- वृद्धापन के लिए `मुर्दा अजगर`, `खाली मस्तक` के लिए `सड़ा नारियल` आज की विकृति संस्कृति के लिए `गलित अंग वेश्या` आदि जैसे नये उपमानों के प्रयोग उपलब्ध होते हैं।

डा0 भारती जी ने भावों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमान, व मूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमानों की योजना भी की है। इसके लिए एक-एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

(अमूर्त के लिए मूर्त उपमान)

1- क्या यह उमड़ता---------सागर सा।[1]

2- अंधेरी रात में खिलते हुए
बेले- सरीखा मन[2]

1, उपर्युक्त पंक्तियों में मर्यादा से दबे मानव हृदय में स्थित सूक्ष्म प्रेमादि भावों की अभिव्यक्ति प्रकृति के मूर्त या स्थूल उपमानों `सागर, ज्वार, `स्वाती-बूंद` तथा `मुक्ता निर्माण की क्रिया द्वारा हुई है।

(मूर्त के लिए अमूर्त उपमान)

प्रियतम के गोरे पाँवों के लिए लहर में नाचते कमल की छाँव, खण्डहरों में सिसकते, स्वर्ग के दो गान, रश्मि-पंखों पर अभी उतरे हुए वरदान[3], तथा जूही के तन के लिए लहरों में बल खातीं किरनों सा-लचकीला[4], कहा है। इसी प्रकार डा0 भारती जी

1- सात गीत वर्ष- पृ0 130-131

2- ठण्डा लोहा- पृ0 18

3- वही- पृ0 `तुम्हारे चरण कविता`

4- सात गीत वर्ष- `केवल तन का रिश्ता कविता`

के काव्य में मूर्त उपमेयों के लिए मूर्त उपमानों एवं अमूर्त उपमेयों के लिए अमूर्त उपमानों का प्रयोग भी काफी हुआ है। किन्तु उनमें सर्वत्र मूर्त उपमानों की अधिकता पाई जाती है। कहीं-कहीं एक ही उपमेय के लिए अनेक उपमानों की सृष्टि भी की गई है - इस प्रकार के अधिक उदाहरण 'कनुप्रिया' से दिए जा सकते हैं -

'बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चांद,
रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण सा -
- मेरा यह जिस्म'[1]

~~अलंकार-~~

अलंकार-योजना :

शोभा की अतिशय वृद्धि करनेवाले रसभावादि के उपकारक जो शब्द एवं अर्थ के अस्थिर धर्म हैं वे काव्य में अलंकार कहलाते हैं। 'पल्लव' की भूमिका में अलंकारों के भाव-प्रेरित मनोवैज्ञानिक भूमिका का निर्देश करते हुए कविवर पंत जी ने लिखा है- 'अलंकार मात्र वाणी की सजावट के लिए नहीं है, वे अभिव्यंजना के भी विशेष माध्यम हैं, भाषा की पुष्टि तथा राग कीपूर्णता के वे आवश्यक उपादान हैं। पृथक् स्थितियों के पृथक रूप, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के भिन्न-भिन्न चित्र हैं।'[2] डा0 भारती जी के काव्य में प्रयुक्त अलंकारों के अनुशीलन में हम प्रथम मुख्य शब्दालंकारों को लेंगे और तदनन्तर प्रधान अर्थालंकारों को।

1- कनुप्रिया- पृ0 57

2- सुमित्रानंदन पंत- पल्लव 'प्रवेश' - पृ0 32

अनुप्रास :

शब्दालंकारों में आधारभूत है। नाद-सौंदर्य की सृष्टि के लिए यह सहायक होता है। ध्वन्यर्थ व्यंजना का चमत्कार भी इससे उत्पन्न होता है। इसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य है -

1- जार्जेट के पीले पल्ले सी (`प` `ल` की आवृति)

2- जिनमें प्यासी सीपी-सी (`सी` की आवृति)

3- उन्मन मन पर (`मन` की आवृति)

4- नव चमचम चुनरी (`च` की आवृति)

श्लेष तथा यमक के प्रयोग डा0 भारती जी ने बहुत ही कम किये हैं, तथापि, कतिपय उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

पर आज पर कटे तीरों सी मेरी सांसें[1]

देखो कैसे वे ? अंधे हैं, (श्लेष) (यमक)

यहां `अन्धे` शब्द का श्लिष्ट प्रयोग है। मनोभावों की व्यंजना के लिए शब्दों की आवृति से वीप्सा अलंकार की सृष्टि होती है। इसका बहुत प्रयोग डा0 भारती जी के काव्य में हुआ है। इसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

`एक एक तार`, `पोर पोर को,` `और बैठे रहे,` बैठे रहे, बैठे रहे। मैं नहीं आयी, नहीं आयी, नहीं आयी,[2] ठण्डा लोहा। ठण्डा लोहा। ठण्डा लोहा। ठहरो। ठहरो। ठहरो। ठहरो। हम आते हैं[3]। क्या पायेंगे प्रभु, हम क्या पायेंगे ? `दो हमको फिर झूठे युद्ध। दो हमको फिर झूठे व्यंग्य[4], आदि। `वीप्सा` की भांति ही पुनरुक्तिप्रकाश` अलंकार में भी काव्य की सौंदर्य वृद्धि के

1-

2- दे0 कनुप्रिया

3- ठण्डा लोहा-

4- सात गीत वर्ष-

निमित्त एक हीशब्द एक ही अर्थ में कई बार प्रयुक्त किया जाता है। वीप्सा की भांति ही 'पुनरुक्तिप्रकाश' अलंकार भी [illegible] डा0 भारती जी का अधिक प्रिय अलंकार है - कुछ उदाहरण देखिए - 'कनुप्रिया' के अनेक स्थलों पर 'कण-कण', 'अपने-अपने', 'बार-बार', 'जल्द जल्दी-जल्दी', 'भर-भर', 'बड़े-बड़े', 'अंग-अंग', 'शब्द,शब्द, शब्द' जैसे एक ही प्रकार आवृत्तिमूलक शब्दों के चमत्कार से काव्य-सौंदर्य में अपार वृद्धि हुई है।

<u>अर्थालंकार :</u> अर्थालंकारों की सृष्टि की जाती है।

सादृश्य, विरोध एवं गोपनमूलकता के आधार पर अनुप्रास की भांति ही उपमा अलंकार को अर्थालंकारों में मूलभूत माना गया है। इसका सर्वाधिक प्रयोग डा0 भारती जी के काव्य में उपलब्ध होता है। अतः इसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

1- ये शरद के चांद से उजले धुले से पांव,[1]
(पूर्णोपमा)

2- मुंह पर ढंक लेती हो आंचल
ज्यों डूब रहे रवि पर बादल[2] (पूर्णोपमा)

3- मुझे लगा कि इस निखिल पारावार में
शक्ति सी, ज्योति सी, गति सी फैली हुई मैं[3] (मालोपमा)

4- मैंने मरोड़ दिया अपने इस धनुष को।
कुचले हुए सांप- सा[4] (लुप्तोपमा)

1- ठण्डा लोहा- पृ0

2- वही- पृ0 7

3- कनुप्रिया- पृ0 36

4- अंधायुग- पृ0 35

उत्प्रेक्षा : में उपमेय की उपमान-रूप में संभावना की जाती है। नीचे उत्प्रेक्षा के उदाहरण दिये गये हैं -

1- मानो यह यमुना की सांवली गहराई नहीं है
यह तुम हो[1] (अपह्नुति के पुट से उत्प्रेक्षा)

2- बांह के पास से हाथ जब कट जाता है।
लगता है वैसा जैसे मेरे सिंहासन का हत्या है[2]

3- भौंहों में इन्द्रधनुष उज्ज्वल
नजरों में ताजे फूल खिले
पुतली में दो प्यासे मधुकर
अलकें ज्यों सरि में नील लहर[3]

4- नरस्क्त से वह तलवार उसके हाथों में
चिपक गई थी ऐसे
जैसे वह उगी हो
उसी के भुजमूलों से।

रूपक :

इसमें उपमेय में उपमान का अभेद आरोप किया जाता है। निम्नोदाहरण दृष्टव्य हैं -

1- मैंने देखा कि अगणित विदग्ध विक्रान्त लहरें
फेन को शिरस्त्राण पहने
सिवार का कवच धारण किये
निर्जीव मछलियों के धनुष के लिए
युद्ध मुद्रा में आतुर हैं[4] (सांग रूपक)

1- कनुप्रिया- पृ0 16
2- अंधायुग- पृ0 50
3- ठण्डा लोहा- पृ0 30
4- कनुप्रिया- पृ0 73

2- तुम जा सकतीं नभ पार अभी
लेकर बादल की मृदुल तरी
बिजुरी की नव चम चम चुनरी[1]

इसी प्रकार अन्य अलंकारों में विरोधाभास, संदेह, भ्रांतिमान, दृष्टांत, विभावना, और अपहृति आदि अलंकारों की भी सुंदर सृष्टि की गई है। इनमें से कतिपय के उदाहरण दृष्टव्य हैं -

1- तुम्हारा अजीब सा प्यार है
जो सम्पूर्णतः बांध कर भी
सम्पूर्णतः मुक्त छोड़ देता है।[2]
(विरोधाभास)

और तुलनीय है
और मेरा मन कभी उस फूल के अंदर
कभी बाहर भटकता है -
उस भ्रमर सा फूलने जिसको न रक्खा कैद
लेकिन मुक्त भी छोड़ा नहीं।
(सात गीत वर्ष-99)

2- तुम्हारी पाती मिली अजान,
कि जैसे मृदु नव जीवनदान
कि जैसे पानी की दो बूंद,
धधकता भीषण रेगिस्तान
कि जैसे घिरी घटा के बीच,
चपल बिजली की मृदु मुस्कान[3]
(सन्देह)

1- ठण्डा लोहा- पृ0 25
2- कनुप्रिया- पृ0 32
3- ठण्डा लोहा- पृ0 35

3- घाट से आते हुए कदम्ब के नीचे खड़े कनु को
ध्यान मग्न देवता समझ, प्रणाम करने
जिस राह से तू लौटी थी बावरी
आज उस राह से, न लौट[1]

(भ्रांतिमान)

4- मुझको मत बाहें दो फिर भी मैं घेरे रहूंगा तुम्हें
मुझको मत नयन दो फिर भी देखता रहूंगा
मुझको मत पग दो लेकिन तुम तक मैं
पहुंच कर रहूंगा प्रभु![2]

(विभावना)

5- बादल नहीं है ये गिद्ध हैं
लाखों करोड़ों पांखें खोले
+ +
मातुल मैं योद्धा नहीं हूं
बर्बर पशु हूं[3]

(अपह्नुति)

'कनुप्रिया' में स्मरण एवं प्रश्न अलंकार का भी सुंदर विनियोग किया गया है। पाश्चात्य अलंकारों में विशेषकर मानवीकरण एवं विशेषण-विपर्यय जैसे अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग भी अधिक बार हुआ है। कुछ उदाहरण लीजिए -

<u>मानवीकरण :</u>

1- ढलते सूरज की उदास कांपती किरणें
तुम्हारे माथे के मोरपंखों से बेबस
विदा मांगने लगीं- मैं नहीं आयी[4]

1- कनुप्रिया- पृ0 64
2- अंधायुग- पृ0 123
3- वही- पृ0 16,40
4- कनुप्रिया- पृ0 22

2- आज-कल तमाम रात
चांदनी जगाती है
मुंह पर दे दे छींटे
अधखुले झरोखे से
अन्दर आ जाती है
दबेपांव धोखे से[1]

3- एक अकेला चंचल बादल
चांदी के हिरने-सा घाटी में चरता है।[2]

विशेषण-विपर्यय :

यहां विशेषण को उसके वास्तविक स्थल से हटाकर अन्य स्थल पर प्रयुक्त किया जाता है। यथा- 'उदास कांपती किरणें'। इसी प्रकार 'लहरों में बल खाती किरनों सा', 'अंधी जहरीली गुफा', 'खामोश सांझ-तारा', 'बहरी हुई दिशा', 'बेजबान समन्दर', 'रूखे हठीले कुन्तल आदि। जैसे विशेषण-विपर्ययों का भी बहुत बार प्रयोग हुआ है।[3]

यहां केवल कतिपय प्रसिद्ध अलंकारों का ही निर्देश किया गया है। वैसे तो विवेच्य रचनाओं में एक साथ कई भिन्न-भिन्न अलंकारों का भी निबन्धन हुआ है।

1- सात गीत वर्ष- पृ0 102

2- वही- पृ0 126

3- दे0 वही-

बिम्ब एवं प्रतीक विधान :

बिम्ब का सामान्यतया कोशगत अर्थ 'प्रतिच्छवि', 'प्रतिच्छाया' अथवा 'प्रत्यंकन' है। उक्त प्रतिच्छाया का अंकन कवि भावानुकूल कल्पना के माध्यम से करता है, इससे भावों का सौंदर्य बढ़ जाता है। वैसे 'बिम्ब' अंग्रेजी शब्द 'इमेज' का ही पर्याय है जिसका सामान्य अर्थ होता है चित्र, रूप, मूर्ति अथवा प्रतिमा। इस प्रकार किसी पदार्थ की बाह्य आकृति की नेत्र-सुलभ नकल, अनुकृति अथवा प्रति-कृति 'इमेज' कहलाती है।[1] अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने तथाकथित आधार पर काव्य-बिम्ब की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी हैं। सी0 डे0 लीविस के विचारानुसार 'काव्य-बिम्ब न्यूनाधिक परिणाम में ऐन्द्रियता के तत्व से समंजित, कुछ अंशों में अलंकृत, शब्द -चित्र हैं जिनके संदर्भ में किसी मानवीय संवेदना की अन्तर्ध्वनि रहती है तथा जो एक विशिष्ट काव्यात्मक भाव या राग से गर्भित होने के साथ वैसी ही रागात्मक अनुभूति पाठकों में उद्दीप्त कर सकता है।"[2] डा0 नगेन्द्र जी ने किसी अमूर्त विचार या भावना की पुनर्निर्मिति को बिम्ब माना है - 'बिम्ब मूलत: कवि के मानसिक चित्र हैं जो कवि कौशल से सहृदय की मनोभूमि पर उतरकर उसे आनंदित करते हैं।[3] बिम्ब का मूल विषय मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार का हो सकता है, यद्यपि बिम्ब स्वत: अमूर्त नहीं होता, मूर्तता, अर्थात्, गोचरता (किसी न किसी इन्द्रिय का विषय होना) उसके लिए आवश्यक है।[4]

वर्गीकरण :

प्राय: सुधी समालोचकों ने अनेक दृष्टियों से बिम्ब को वर्गीकृत करने

1- Concise Axford Dictionary(4th Add.)

2- दे0 C.D.Lewis' The Poetic images Eighth impression,P.22

3- दे0 वेदप्रकाश शर्मा निराला के काव्य-बिम्ब और प्रतीक-पृ0 141

4- डा0 नगेन्द्र : 'काव्य-बिम्ब' (1967) पृ0 5

काप्रयास किया है तथापि अद्यावधि इसके वर्गीकरण को कोई एक निश्चित आधार नहीं प्राप्त हो सका है। और नवप्रसूत अनेकविध बिम्बों की सृष्टि में उनमें विभाजक रेखा खिंचना संभव भी नहीं। डा० नगेन्द्र जी ने अपने ग्रंथ 'काव्य-बिम्ब' में पंच ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर दृश्य, स्पृश्य, ध्वनि, गंध और स्पर्श बिम्ब की चर्चा की है। इनके अतिरिक्त उन्होंने अन्य कई प्रकार के बिम्बों की चर्चा की है। डा० भारती जी के काव्य में प्राय: सभी प्रकार के बिम्ब उपलब्ध होते हैं अत: हम विषय विस्तार के भय से डा० भारती जी के काव्य में प्रयुक्त कुछ खास बिम्बों तक अपनी दृष्टि को सीमित रखें।

ऐन्द्रिक बिम्ब :

इस रूप में श्रव्य, घ्रातव्य, चाक्षुष, स्पृश्य, स्वाद्य संवेदनाओं के माध्यम से ऐन्द्रिक बिम्बों की सृष्टि की जाती है। इससे कथ्य अधिक सम्वेदित एवं सम्प्रेषित हो उठता है। डा० भारती जी की काव्य-प्रकृति मूलत: रोमैण्टिक है, अत: उनके काव्य में श्रव्य, घ्रातव्य व आस्वाद्य बिम्बों की अपेक्षा स्पृश्य एवं चाक्षुष बिम्बों का सर्वाधिक प्रयोग उपलब्ध होता है। तथाकथित ऐन्द्रिक बिम्बों का आधार प्राय: प्रकृति-जगत् ही है अत: ऐसे बिम्बों में प्राकृतिक बिम्बों को भी देखा जा सकता है। इसके कतिपय उदाहरण निम्नोद्धृत हैं -

स्पृश्य बिम्ब :

1- और यह मेरा कसाव निर्मम है
और अन्धा, और उन्माद भरा, और मेरी बाँहें
नागबधू की गुंजलक की भाँति
कसती जा रही हैं
और तुम्हारे कन्धों पर, बाँहों पर, होंठों पर
नाग बधू की शुभ्र दन्त-पंक्तियों के नीले-नीले
चिन्ह उभर आये हैं।[1] (स्पृश्य बिम्ब)

1- कनुप्रिया- पृ० 51

2- उफ मेरी बांहों में शव जैसा ठंडा
कौन गिरा ?[1] (स्पृश्य बिम्ब)

3- देख नहीं सकता हूं पर मैंने छू-छू कर
अंग-भंग सैनिकों को देखने की कोशिश की
बांह के पास से हाथ जब कट जाता है
लगता है वैसा जैसे मेरे सिंहासन का हत्था है ।[2]
(स्पृश्य बिम्ब)

इसी प्रकार 'कनुप्रिया' की निम्न पंक्तियों में 'स्पृश्य' बिम्ब की प्रभावोत्पादक योजना की गई है। यथा-

4 कांपते------उसांसों (पृ0 43, स्पर्श-गंध बिम्ब)
5 मैंने कस----- हो जायं (पृ0 51)
6, आधीरात दंश भरा--- गुंजलक में (पृ0 57)
7 चुपताप----रूखी अलकों (पृ0 62) आदि ।

प्राय: आलोच्य कृतियों में आलिंगन, चुम्बन, छेड़-छाड़ आदि के से प्रसंगों पर स्पृश्य बिम्बों की सुंदर सृष्टि की गई है।

चाक्षुष बिम्ब :

इस प्रकार के बिम्बों का प्रचुर प्रयोग डा0 भारती जी के काव्य में हो पाया है। ऐसे बिम्बों में रूपगत रंग, कान्ति, गतियों और प्रभावों का भी बिम्बन किया गया है। कहीं-कहीं घृणा, प्रेम, आदि सूक्ष्म भावों को भी रंगायित कर मूर्त रूप प्रदान किया गया है।

1- ठण्डा लोहा- पृ0 66

2- अंधायुग- पृ0 50

1- खाली हाथ, नंगे पाव, रक्त-सने
फटे वस्त्रों में, टूटे रथ के समीप
खड़ा था निहत्था ही अश्रु भरे नेत्रों से
उसने मुझे देखा। (अंधा युग, पृ0 34)

2- कौए के कटे पंख सी काली
रक्तरंगी घृणा है भयानक उसकी (अंधा,- 77)

3- सूरज में मुण्डहीन काले-काले कबन्ध
हिलते नजर आते हैं। (अंधा-119)

4- नदियां नीचे चमक उठी रूपा डोरी सी
धीरे धीरे परतें कटने लगी धूप की
यहां वहां पर पिघले सोने के पानी सी
धूप टपकने लगी
गांव खिल गये, फूल से (सात0 125, 126)

5- तुम्हें तो मालूम है कि मैं वही बावली
लड़की हूं न। जो पानी भरने जाती हैं
तो भरे हुए घड़े में
अपनी चंचल आंखों की छाया देखकर
उन्हें कुलेल करती चटुल मछलियां समझकर
बार बार सारा पानी ढुलका देती हैं।

(कनुप्रिया- 28-29)

गंध-[illegible] बिम्ब : इसके कुछ उदाहरण देखिए -

1- और तुम्हारे जादू भरे होठों से
रजनीगंधा के फूलों की तरह टप् टप्
शब्द झर रहे हैं।

(कनुप्रिया-71)

इसी प्रकार 'कनुप्रिया' की निम्नांकित पंक्तियों में गंध-बिम्ब की सुंदर सृष्टि दृष्टव्य है -

2- तो क्या------होंगे (पृ0 25)
3- मेरे-----केशों में (पृ0 28)
4- आम के ------होती है (पृ0 30)
5- जो धरती में -----आता है (पृ0 41)

तद्वत अन्य उदाहरण -

6- मंथर-----चलती थी (अंधायुग-14)
7- थी बनतुलसी-----केवल (अंधायुग 122)
8- थाले की जूही------महकी (सात0 53)
9- सत्य है -----सुगंधित एक लघु वीड़ा (सात0 75)

श्रव्य या नाद बिम्ब :

प्राय: ऐसे बिम्ब प्राकृतिक पदार्थ, मानव एवं मानवकृत वस्तुओं से उद्भूत शब्दों के माध्यम से प्रतिध्वनित होते हैं। इसके कुछ उदाहरण लीजिए -

1- नभ चुम्बी लहरें रह रह खाती थी पछाड़
था घुला समुद्री फेन समीर झकोरों में
बह चली हवा, वह खड़ खड़ खड़
कर उठे ताड़[1]

1- अंधायुग- पृ0 121

2- शंख-ध्वनि-----शिविर को (अंधा0-62)

3- हहराती------तरह (कनु0 51)

4- आज हवाओं----नूपुर(ठण्डा0 17)

5- क्यारी -----संगीत (वही0 34)

6- आंगन-------चहकी (सात0 53)

7- ट्रेन ने सीटी दी-----उनकी (सात0 65)

8- गोधूली में-----अस्त होते हैं (सात0 89)

स्वाद-बिम्ब :

इस प्रकार के बिम्बों का नितांत अभाव है। तथापि कतिपय उदाहरण लीजिए -

1- पृथ्वी पर रसमय बनस्पतियां नहीं होंगी (अंधा0 95)

2- मुझे तो वासना का विष
हमेशा बन गया अमृत(ठण्डा0 18)

3- 8-तुम्हें आदिम गुनाहों का अजब-सा
इन्द्रधनुषी स्वाद। (ठण्डा0 18)

4- एक सा स्वाद छोड़ जाती है
जिन्दगी तृप्त भी प्यासी भी (सात0 98)

5- और यह जिन्दगी किसी सुंदर
चित्र में रंगलिखी सुरा-सी है (सात0 95)

3,4, में स्वाद का कोई निश्चित बिम्ब खड़ा नहीं होता, केवल भोक्ता की अनुभूति या कल्पना पर आधारित है।

अनेक स्थानों पर सांस्कृतिक व पौराणिक या धार्मिक बिम्बों की सुंदर छवियां आलेखित की गई हैं। इस दृष्टि से निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं।

1- अर्चना की धूप सी तुम गोद में लहरा गई[1]

(सांस्कृतिक बिम्ब)

2- रख दिये तुमने सरल संगीत से निर्मित अधर
आरती के दीपकों की झिलमिलाती छांह में
बांसुरी रक्खी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठ पर[2]

यहां `आरती`, `दीपक`, `संगीत`, `बांसुरी` , `भागवत` आदि शब्द धार्मिक, पौराणिक या सांस्कृतिक वातावरण की सृष्टि करते हैं।

3- हो गया मूक
लेकिन उस दिन मेरी अलबेली वाणी में
थे बोल उठे
गीता के मंजुल श्लोक ऋचाएं वेदों की[3]।

4- घृणा के उस कालियनाग का दमन
अब क्या कृष्ण कर पायेंगे[4]

5- ये दोनों ब्रह्मास्त्र अभी नभ में टकरायेंगे[5]

6- पाण्डव राज युधिष्ठिर के काले कुत्ते सी
पीछे पीछे पूंछ दबाये,-----
ओ मेरी परछांहीं, मेरा साथ छोड़ दे।[6]

1- ठण्डा लोहा- पृ0 11

2- वही- पृ0 33

3- सं0 अज्ञेय, दूसरा सप्तक(द्वि.सं0 1970)`जाड़े की शाम`कविता,पृ0 184

4- अंधायुग- पृ0 77

5- ,, पृ0 95

6- ठण्डा लोहा- पृ0 87

इसी प्रकार 'ठण्डा-लोहा' की 'कविता की मौत', 'यक्ष का निवेदन', तथा 'सात गीत वर्ष' की 'प्रमथ्यु गाथा', 'बृहन्नला', 'एक अवतारमें' आदि जैसी कविताओं में पौराणिक-बिम्बों की प्रभावोत्पादक सृष्टि हुई है।

इसी प्रकार प्रतीकात्मक बिम्बों का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है। इस दृष्टि से 'अन्धायुग' के प्रतीक-बिम्ब उल्लेखनीय हैं। गांधारी-धृतराष्ट्र के लिए 'दो बुझती लपटें' मोहान्ध प्रवृत्तियों से ग्रस्त शासकों के लिए 'अंधों से शोभित था युग का सिंहासन', अज्ञान व अनाचार के लिए 'अँधेरा निगल जायेगा', 'उतर आये हैं' अपनी धुरी से आज एक एक करके सारे पहिये' तथा संसार में प्रतिक्षण महान् मूल्यों के ह्रास के लिए 'हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं' आदि प्रतीकों का उपयोग किया गया है। प्रतीक-बिम्बों की भांति डा० भारती जी ने अलंकारों के माध्यम से अलंकृत बिम्बों का भी प्रयोग किया है। अलंकारों का विस्तृत विचार किया जा चुका है अत: यहाँ केवल एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा - शब्द के सूक्ष्म प्रभाव को गोचर व मूर्त रूप प्रदान करने के लिए उपमा का बिम्बात्मक प्रयोग देखिए -

'शब्द यह जलते हुए लोहे की सलाखों सा
मेरी पसलियों में धंसता है। (अंधायुग)

डा० भारती जी के काव्य में यौन, यांत्रिक व कृषि-चारण सम्बंधी बिम्बों की भी सफल सृष्टि हुई है। विशेषकर यौन-बिम्बों की दृष्टि से 'ठण्डा लोहा' की 'तुम्हारे चरण', 'बादलों कीपांतें', 'बसन्ती दिन', 'गुनाह का गीत' और 'सात गीत वर्ष की 'नवम्बर की दोपहर' तथा 'घाटी का बादल' शीर्षक कविताएं विशेष उल्लेखनीय हैं। घाटी के बादल' से इसका एक उदाहरण देखिए -

'प्रात धूप की जरतारी ओढ़नी लपेटे
अभी अभी जागी खुमार से भरी
नितान्त कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघ घम के
औचक आलिंगन में पिस कर
रति श्रान्ता-सी मलिन हो गई।[1] 'कनुप्रिया' तो यौनपरक बिम्बों

के दर्पणों का 'शीश महल' ही है। 'चन्दन-बांहों में भर कर राधा के बेसुध होने के अनेक प्रसंग इसमें उपलब्ध होते हैं।

वैज्ञानिक -यांत्रिक युग का प्रभाव मानव जीवन पर पड़ा है अत: डा० भारती जी ने कनुप्रिया के मन के उद्वेग को प्रकट करने के लिए तथाकथित बिम्ब का भी प्रयोग किया है -

(उसे मिटाते दु:ख क्यों नहीं होता कनु!
क्या अब मैं केवल दो यन्त्रों का पुंज मात्र हूं ?
- दो परस्पर विपरीत यन्त्र -
उनमें से एक बिना अनुमति नाम लिखता है
दूसरा उसे बिना हिचक मिटा देता है!)[2]

इसमें राधा द्वारा कृष्ण का गुप्त नाम लिखकर पुन: उसे निर्ममता पूर्वक मिटा देने की व्याकुलता को यांत्रिक क्रिया द्वारा सम्मूर्तित किया गया है। कृषि-चारण, सम्बन्धी बिम्ब बहुत ही कम हैं। केवल 'ठण्डा लोहा' की 'बोवाई का गीत' और 'सात गीत वर्ष' की 'बातें' कविता में ऐसे बिम्ब उपलब्ध होते हैं। इनका एक एक उदाहरण देखिए -

---

1- सात गीत वर्ष- पृ० 120

2- कनुप्रिया- पृ० 62

1- गोरी-गोरी सोंधी धरती-कारे कारे बीज
बदरा पानी दे।
क्यारी क्यारी गूंज उठा संगीत[1]
(कृषि बिम्ब)

2- गोधूली में चरवाहों की वंशी जैसे
शब्द कहीं दूर, कहीं दूर अस्त होते हैं[2]

डा0 भारती जी ने अनेक स्थानों पर कल्पना के माध्यम से भावों-विचारों अथवा स्थितियों को अधिक संवेद्य बनाने के लिए एक ही वर्ण्य-विषय से सम्बंधित अनेक बिम्बों की संश्लिष्ट माला का भी बड़ी सफलता के साथ प्रयोग किया है -यथा-

"कल तक जो जादू था
सूरज था, वेग था, तुम्हारे आश्लेष में
आज वह जूड़े से गिरे हुए बेले सा
टूटा है, म्लान है, दुगुना सुनसान है
बीते हुए उत्सव सा, उठे हुए मेले सा
मेरा यह जिस्म।[3] उपर्युक्त उद्धरण में एक ही वर्ण्य-विषय (जिस्म, निराशादि) के मूर्तिकरण के लिए अनेक बिम्बों की योजना की गई है।

अत: ऊपर विवेचित तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि डा0 भारती जी ने बिम्बों के माध्यम से केवल भावों या स्थितियों का दृश्यांकन या प्रत्यंकन ही नहीं किया है। अपितु उनके प्रभावों को भी बिम्बाङ्कन किया है। अतएव उनकी बिम्ब-सृष्टि निसंदेह ही श्रेष्ठ-कोटि की हो पाई है।

1- ठण्डा लोहा- पृ0 34

2- सात गीत वर्ष- पृ0 89

3- कनुप्रिया- पृ0 57

प्रतीक विधान :

काव्य में प्रतीक भावों की अभिव्यंजना के सशक्त माध्यम हैं। 'प्रतीक-योजना करते हुए कवि का उद्देश्य अपने अर्थ की अभिव्यक्ति, अपने अनुभव का प्रेषण करना है।[1] कवि जब अपने भावों की तदनुरूप अभिव्यक्ति के लिए वाणी की विवशता का अनुभव करता है, ऐसे क्षणों में नपे-तुले व सटीक शब्दों के प्रयोग के रूप में प्रतीक का महत्व और भी बढ़ जाता है। प्रतीक प्राय: किसी न किसी रूप में किसी भी भाव, विचार या स्थिति बोध का प्रतिनिधित्व करते हैं अत:उनमें तद्-स्थिति स्थापक तादात्म्य का गुण भी पाया जाता है। इसीलिए कभी-कभी प्रतीकों द्वारा प्रेषित अर्थ को भिन्न-भिन्न व्यक्ति उस अर्थ में भी ग्रहण कर लेता है जो प्रयोक्ता को अभिप्रेत नहीं होता।

बिम्बों की भाँति ही डा0 भारती जी ने जीवन के अनेक क्षेत्रों से प्रतीकों का चयन किया है। अत: उनके काव्य में यौन, प्रकृति, इतिहास-पुराण-संस्कृति, धर्म, विज्ञान, प्रकृति, व जीवन के क्रिया-कलाप आदि सम्बंधी अनेक विध प्रतीक उपलब्ध होते हैं।

यौन-प्रतीक :

ऐसेप्रतीकों पर फ्रायड़ महोदय के यौन-परक सिद्धान्तों का काफी प्रभाव है। उन्होंने सम्पूर्ण कला को अचेतन, दमित तथा कुण्ठित काम-प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति माना है। डा0 भारती जी के काव्य में विशेषकर 'कनुप्रिया' और 'ठण्डा लोहा' में यौनपरक प्रतीकों की मनोहारी सृष्टि हुई है। 'कनुप्रिया' के आम्र-बौर का अर्थ शीर्षक गीत में 'अर्द्धोन्मीलित कमल', 'अंजुरी भर बेले के फूल', 'आलस्य के दो उजले कटावदार फूल' और 'आम्र-बौर' आदि रागात्मक व कुण्ठित मनोभावों के प्रतीक हैं।

1- डा0 प्रकाश गौतम- 'प्रतीक और बिम्ब का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण', साहित्य-संदेश- जुलाई-अगस्त(1967) पृ0 6-7

इसी प्रकार 'ठण्डा लोहा' में 'भंवरों की ताजी भूल' स्वच्छंद प्रेम व्यवहार, नसों का रेशमी तूफान' वासना या प्रेम और 'अंगूर की पर्तें' चुम्बन का प्रतीक है। इसी प्रकार 'सात गीत वर्ष' संग्रह की 'घाटी का बादल' कविता से एक उदाहरण देखिए -

थका हुआ बादल
पश्चिम के श्याम निरावृत्त
शिखरों पर
शीतल कपोल धर
क्षण गहरी नींद सो गया।[1]

प्रस्तुत चित्र में बादल द्वारा एक विलासी पुरुष का चित्र अंकित किया गया है। इससे उक्त पुरुष की रति या संभोगोत्पन्न थकान की अनुभूति का बोध होता है।

प्राकृतिक प्रतीक :

डा0 भारती जी के काव्य में प्राकृतिक उपकरणों के प्रतीकात्मक रूपों का सर्वाधिक प्रयोग दृष्टिगत होता है। 'इन्द्रधनुष' को डा0 भारती जी ने सौंदर्य का प्रतीक माना है।[2] इसी प्रकार 'ठण्डा लोहा' में 'मासूम बादल,' 'कमल की छांव' पांव के प्रतीक हैं। 'फूल' प्रेम, 'शलभ' प्रेमी नायक, 'स्वर्ण-किरण' स्मृति 'मुंगिया बादल' होंठ, 'बिजलियों के अछूते फूल' अंगों के प्रतीक हैं। सात गीत वर्ष में 'सीपी की डालें', 'धूल भरा पवन झकोरा' और 'आंधी' क्रमशः गोरे कन्धे, 'विरह-वेदना और कैशोर्यावस्था के प्रतीक हैं। भावपरक प्रतीक की दृष्टि से निम्नोद्धृत उदाहरण दृष्टव्य है -

---

1- सात गीत वर्ष- पृ0 120

2- ठण्डालोहा- पृ0 24

'क्या यह उमड़ता, अमर्यादित व्याकुल ज्वार,
इन पतले होंठों पर बंधकर सिमट जाएगा'[1]
'स्वाती की केवल एक बूंद सा-
पकने को, पीड़ा में गहरे डूब कर मोती रचने को
सब कुछ टूट जाने पर भी अटूट बचने को
आतुर एक बंधा फूल सागर का ।[2]

उपर्युक्त काव्यांश में 'फूल' नवयौवना प्रेयसी के लिए, 'सागर' उसके अन्तस् में स्थित भावों के लिए 'उमड़ता, अमायर्दित व्याकुल ज्वार' व्याकुल भाव-धारा की अभिव्यक्ति के लिए और 'मोती' संयमित बहुमूल्य, अनभिव्यक्त प्रेम के लिए प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त हुए हैं ।

<u>सांस्कृतिक प्रतीक :</u>

सामान्यतया संस्कृति की कोई निश्चित व्याख्या संभव नहीं । उसके अनेक स्रोत हो सकते हैं यथा-समाज, इतिहास (रामायण, महाभारत, पुराण) कला, साहित्य दर्शन, साधना आदि । डा0 भारती जी के काव्य में प्राय: तथोक्त सभी प्रकार के प्रतीक उपलब्ध होते हैं । भारतीय समाज की विशेषता की दृष्टि से 'ठण्डा लोहा' सामाजिक रूढ़ियों की प्रबलता का प्रतीक है - देखिए -

1- मेरी सांसों मैंयम के तीखे नेजे-सा
कौन अड़ा है ? ठण्डा लोहा ।[3]

2- मर गयी कविता वही एक तुलसी पत्र औ
दो बूंद गंगाजल बिना'[4]

1- ठण्डा लोहा पृ० 24
2- सात गीत वर्ष (फूल, सागर, सीपी- पृ0 114
3- ठण्डा लोहा- पृ0 1
4- वही- पृ0 44

भारतीय संस्कृति केअनुसार मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व व्यक्ति को धार्मिक आस्था के कारण `तुलसीपत्र` और `गंगाजल` देने की प्रथा प्रचलित है। इसी प्रकार `कनुप्रिया` में सामाजिक मर्यादा व आचरण के संकेत के लिए `माथे पर पल्ला डाल लो।` तथा `पतली उजली पगडण्डी पर कनु का आम्र-मंजरी को चुर चुर कर बिखेरना` आदि इसी प्रकार प्रतीकार्थ हैं। इन्हें परम्परित प्रतीक भी कहा जा सकता है।

जब इतिहास के किसी व्यक्ति या घटनाएं किसी भाव या विचारादि का प्रतिनिधित्व करती हैं तब ऐतिहासिक प्रतीकों की सृष्टि होती है। यथा-

`सत्य है राजा हर्षवर्धन के हाथोंसे
मिला हुआ पान का सुगन्धित एक लघु बीड़ा
(चाहे वह झूठा हो)
उस पर लगा हुआ वर्कदार सोना था।
हाय बाणभट्ट! हाय! तुमको भी
आखिर यही होना था।[1]

2- मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूं
लेकिन मुझे फेंको मत---
क्या जाने सच्चाई टूटे पहिये का आश्रय ले[2]

1, राजा हर्षवर्धन वैभव सम्पन्न व्यक्ति का प्रतीक है - वर्कदार सोना प्रलोभन का तथा बाणभट्ट आज के प्रलोभन प्रिय कवियों का प्रतीक है। 2 `टूटा हुआ पहिया` अभिमन्यु की गाथा पर आधारित ऐतिहासिक प्रतीक है। इसके द्वारा आधुनिक खण्डित व टूटे हुए व्यक्ति में निहित जीजिविषा या अस्तित्व रक्षा की भावना को

1- सात गीत वर्ष- पृ0 88

2- वही- पृ0 92-93

व्यंजित किया गया है। इसी प्रकार 'बृहन्नला' क्लीवीय पौरुष सम्पन्न व्यक्ति का प्रतीक है। 'अंधा युग' के महाभारतीय पात्र भी प्रतीकात्मक हैं -

'हम सबके मन में गहरा उतर गया है
युग। अंधियारा है
अश्वत्थामा है, संजय है, है दास वृत्तियां उन
दोनों वृद्ध प्रहरियों की।[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में 'अश्वत्थामा' प्रतिहिंसारत व्यक्ति, 'संजय' निष्क्रिय व तटस्थ व्यक्ति, तथा वृद्ध प्रहरी आज की पराजित व निराश जनता के भाव-प्रतीक हैं। 'कनुप्रिया' में कनु और राधा के प्राचीन व सांस्कृतिक पात्र आधुनिक स्त्री-पुरुष के प्रेम-संदर्भों से जुडे दो नये प्रतीक हैं। राधा के माध्यम से स्त्री-जीवन के प्रेम संदर्भों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। यूनान का पौराणिक पुरुष प्रमथ्यु साहसी, विद्रोही, कर्मनिष्ठ और ज्योति विरोधी शक्तियों से जूझनेवाला ओजस्वी व्यक्तित्व का प्रतीक है।[2] दार्शनिक प्रतीक की दृष्टि से 'कनुप्रिया' के कनु और राधा पुरुष और प्रकृति के शाश्वतप्रेम सम्बंधों के प्रतीक हैं। इसी प्रकार 'अंधायुग' कृष्ण की रहस्यपरक दार्शनिक अभिव्यक्ति 'समापन' वाले अंश में हुई है - 'तुम जो हो शब्द ~~-ब्रह्म~~, अर्थों के परम अर्थ
जिसको आश्रय पाकर वाणी होती न व्यर्थ[3] आदि।

डा0 भारती जी ने आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं, संत्रास व विघटनमूलक स्थितियों पर आधारित वैयक्तिगत प्रतीकों की भी सृष्टि की है। जिनमें आधुनिक व्यक्ति की [illegible] निराशा, संशय, आक्रोश, कुण्ठा आदि सम्बन्धी मनोविश्लेषणपरक मन: स्थितियों को देखा जा सकता है। वैज्ञानिक व पाश्चात्य सभ्यता के परिणाम-स्वरूप आज के जीवन में मह्ज खोखलापन व आडम्बर प्रियता घर कर गई है जिसकी

1- अंधायुग- पृ0 64

2- दे0 सात0 (प्रमथ्यु गाथा शीर्षक कविता)

3- अंधायुग- पृ0 121

अभिव्यक्ति के लिए 'टूटी तलवारों की मूठ', 'दर्पणों' व 'चौखटों' से व्यंग्यात्मक प्रतीकों का उपयोग किया है। इसीप्रकार अन्य प्रतीकों में सामाजिक विषमता के लिए 'चक्र-व्यूह', 'सांपों की खेती', 'काले अन्धड़', तथा असफल विवश व हताश पूर्ण जीवन के लिए 'बूंद बूंद पीकर पथ पर छोड़ा हुआ खाली प्याला', 'दुर्बल मोमबत्ती' भरी दोपहर में अंधियारे से टूटा हुआ सूर्य' आदि प्रतीक हैं। इसी प्रकार आस्थावान व सक्रिय व्यक्ति के लिए 'सूर्य', 'पन्थ' व 'कमल' के प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।

अत: संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि डा0 भारती जी के काव्य में आधुनिक जीवन बोध के अनुरूप प्राय: सभी प्रकार के प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग किया गया है इनमें क्लिष्टता व दुर्बोधता न होकर पर्याप्त सघनता व भावपेशलता का गुण सर्वत्र विद्यमान है।

छन्द-योजना :

स्वातंत्र्योत्तर काव्य छंद के नियमों की अनुबद्धता कोस्वीकार नहीं करता। उसमें परम्परागत मात्रिक और वार्णिक छंदों की अपेक्षा अतुकान्त या मुक्त छन्दों की स्वच्छन्द गति का लय-प्रवाह ही दृष्टिगत होता है। किन्तु उक्त लयात्मक प्रवाह में एक कवित्त सा आनंद या छटानिहित होने के कारण वह एक प्रकार से छन्द का सा ही प्रतीत होता है। तथाकथित परिवर्तित या नव्य छंदों के प्रायोगिक रूपों पर प्राय: छंद और लय की दृष्टि से दो प्रकार का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है एक परम्परागत छन्द विधान का न्यूनाधिक प्रभाव कि जिसमें नवीनता के आधार पर प्रयुक्त परम्परागत छंद-योजना को 'नव विकर्षाधार' की संज्ञा दी गई है।[1] तथा दूसरा अंग्रेजी और उर्दू के छंदों का प्रभाव। इसके साथ हीलोकगीतों की धुन पर भी अनेक नूतन छंदों की सृष्टि की गई है।

1- डा0 पुत्तूलाल शुक्ल- 'आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना', पृ0 331

डा0 भारती जी के काव्य में उक्त सभी प्रकार का प्रभाव दृष्टिगत होता है जिसे हम निम्नस्थ रूप से देखना चाहेंगे ।

परम्परागत छन्द प्रयोग :

यद्यपि डा0 भारती जी के काव्य में परम्परागत छंदों के नियमों का पालन नहीं किया गया है तथापि 'नव विकर्ष' के आधार पर मात्रा योजना की दृष्टि सेप्रत्येक चरण में समानता भी प्राप्त होती है। इसके कुछ रूपों के उदाहरण दृष्टव्य हैं -

1- 24 मात्राओं के विकर्ष का छंद :

इस प्रकार के छंद-प्रयोग को परम्परागत रोला छंद के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

'शीशे में अनजाने तन के आभास हिले
अनदेखे पग में जादू के घुंघरू छमके
कालीनों के ऊनी फूल दबे और खिले
थाप पड़ी पहले कुछ तेजी से, फिर थमके
किसने छेड़ी पिछले
जनमों में सुनी हुई
एक किसी गाने की
पहली रंगीन कड़ी[1]

यह छंद प्रत्येक चरण की मात्रा संख्या की दृष्टि से रोला है क्योंकि प्रत्येक चरण में 24 मात्राएं हैं। अंतिम पंक्तियों के प्रथम व द्वितीय तथा तृतीय एवं चतुर्थ चरणों को एक साथ मिलाकर पढ़ने से 24 मात्राएं होती है। 11, 13 की यतिवाले नियम का इसमें पालन नहीं किया गया।

1- सात गीत वर्ष- 'अर्द्ध स्वप्न का नृत्य- पृ0 85

(2) 16 मात्राओं का छन्द-

इस वर्ग के छंद-प्रयोगों में 16 मात्राएं होने के कारण विकर्ष के आधार पर चौपाई का सा छन्द-विधान रहता है। देखिए 'तुम' कविता से एक उदाहरण -

गगन-घन बादल दल में प्रान
एक कोई रिश्ता अनजान
गूंजती एक अटूटी प्यास
प्यार की भूली-सी पहचान[1]

इस छंद के प्रत्येक चरण में 16,16 मात्राएं हैं, अन्त्यक्रम का नियोजन स्वच्छन्द है।

(3) 28 मात्राओं वाला छन्द।

इसके प्रत्येक चरण में 28 मात्राएं होने के कारण विकर्षाधार पर इसे सार छन्द के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

मैंने कभी न चाहा था ये छोर मौत का छू लें
लेकिन मचल गयीं जाने कैसी भूलें अनजानी
कुछ तो तोड़-फोड़ के आदी बचपन ने जिद ठानी
कुछ तरुणाई के मौसम में अग्नि फूल ही फूले
आग और बचपन ने ऐसे नये तरीके ढूंढे[2]

इसके प्रत्येक चरण में 28 मात्राएं हैं। यति क्रम में नवीनता और स्वतंत्रता की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

1- ठण्डा लोहा- पृ0 27

2- ठण्डा-लोहा- 'फूलों की मौत' पृ0 59

उर्दू छन्द :

रुबाइयाँ : इसमें दो शेर होते हैं। पहले, दूसरे और चौथे चरण में तुक की समानता होती है। स्वातंत्र्योत्तर काव्य में 'मुक्तक' के नाम से रुबाइयों की रचना की गई है। उक्त छंद-रूप का प्रयोग डा० भारती जी के काव्य में मिलता है। यथा-

ईश्वर न करे तुम कभी ये दर्द सहो
दर्द, हां अगर चाहो तो इसे दर्द कहो
मगर ये और भी बेदर्द सजा है ऐ दोस्त।
कि हाड-हाड चिटख जाये मगर दर्द न हो।[1]

इस छंद में पहले, दूसरे और चौथे चरण में तुक समान है। तीसरे चरण की भावान्विति का प्रकाशन चौथे चरण में किया गया है। इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण देखिए -

'आज माथे पर, नजर में बादलों को साध कर
रख दिये तुम ने सरल संगीत से निर्मित अधर
आरती के दीपकों की झिलमिलाती छांह में
बांसुरी रक्खी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठ पर[2]

डा० भारती जी के काव्य में गजल के स्वतंत्र रूपों का प्रयोग तो नहीं मिलता किन्तु कहीं-कहीं उसके प्रभाव का सा आनंद लिया जा सकता है। इसमें प्रत्येक शेर की विषय वस्तु का स्वतंत्र अस्तित्व रहता है। प्रभावात्मक शैली शेर या मिसरे की दूसरी पंक्ति में रहती है -

---

सं0 1- ठण्डा लोहा- पृ0 33
2- वही- पृ0 33

वक्त अब बीत गया बादल भी
क्या उदास रंग ले आये
देखिए, कुछ हुई है आहट-सी
कौन है ? तुम? चलो भले आये।
अजनबी लौट चुके द्वारे से
दर्द फिर लौट कर चले आये[1]

लोक-गीत का आधार :

लोक-गीतों में प्राय: ग्राम गीतों की लय और संगीत पाया जाता है। ग्रामीण जीवन की संवेदनाओं के साथ ही साथ व्यक्ति के मन के विभिन्न मनोरागों की अभिव्यक्ति भी इसमें उपलब्ध होती है। डा0 भारती जी के काव्य में ग्रामीण लोक-जीवन के वातावरण के साथ ही लोक-गीतों के माध्यम से विरही या विरहिणी की रोमांटिक भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया है। डा0 भारती जी का 'बोआई का गीत'[2] लोक-गीतात्मक शैली के आधार पर लिखा गया है। स्वयं उन्होंने संकेत किया है कि 'यह एक कोरस नृत्य है, इस गीत में तीन बोल हैं। पहले छंद में 'बोनेवाले। नयी फसल में बोओगे क्या चीज ? प्रश्न है। दूसरे और तीसरे छंद में क्रमश:पुरुषों और स्त्रियों का सामूहिक उत्तर है। इस गीत से ताल और लय का अंदाज लोक-गीतों का ही है। 'बदरा पानी दे' की आवृत्ति प्रत्येक छंद के पश्चात् हुई है जो नृत्य की गति को तीव्रता प्रदान करती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

'गोरी-गोरी सोंधी धरती- कारे-कारे बीज
बदरा पानी दे।

+ + +

1- सात गीत वर्ष- 'शाम दो मन: स्थितियाँ- पृ0
2- ठण्डालोहा- पृ0 36

हम बांधेंगी हरी चुनरियां, कजरी, मेंहदी-

राखी के कुछ सूत और सावन की पहली तीजा।

बदरा पानी दे।[1] इसी प्रकार विरही मन की अभिव्यक्ति के लिए 'ठण्डा लोहा' की 'डोले का गीत', 'फागुन की शाम' तथा सात गीत वर्ष की 'कस्बे की शाम', 'धूल-भरी आंधी का गीत' और 'यह ढलता दिन' शीर्षक कविताएं भी लोक-शैली की धुन पर आधारित हैं। अत: 'डोले का गीत' से एक उदाहरण दृष्टव्य है -

'अगर डोला कभी इस राह से गुजरे कुबेला

यहां अंबवा तरे रुक

एक पल विश्राम लेना

मिलो जब गांव-भर से, बात कहना बात सुनाना

भूल कर मेरा

न हरगिज नाम लेना[2] उक्त गीत में 'विश्राम लेना' 'नाम लेना' आदि जैसे तुक-निपातों की आवृत्ति छंद के लय-प्रवाह में गति को उत्पन्न करने में सहायक हो पायी है। 'अंबवा' 'तरे' 'हरगिज' जैसे शब्द-प्रयोग भी ग्रामीण भाषा के अनुकूल हैं।

मुक्त एवं लयात्मक छंद :

इस प्रकार के छंदों पर पाश्चात्य कवियों (इलियट, लुई मैकनीस और 'न्यू-सिग्नेचर' का अधिक प्रभाव है। इसके लिए छंद के नियमों का पालन आवश्यक नहीं होता। केवल लय-प्रवाह ही इस छंद का समर्थक होता है। किन्तु प्रत्येक मुक्त छंद में

1- ठण्डा-लोहा- पृ0 34

2- वही- पृ0 10

किसी न किसी लय-विधान, छन्द विधान के प्रभाव चिन्ह अवश्य रहते हैं।[1] निराला जी का यह कथन कि 'मुक्त छंद वह है जो छंद की भूमि में रहकर भी उससे मुक्त है' वस्तुत: उक्त कथन का ही पर्याय प्रतीत होता है। ऐसे मुक्त व लयात्मक छंदों में प्रारंभ से अंत तक कोई भी लय अटूट क्रम से नहीं मिलता तथा मात्रा, यति और गति का वैषम्य या वैविध्य भी प्राय: मिलता है। इसीलिए यसे 'रबर' या 'केंचुवा' छंद कीसंज्ञा से भी अभिहित किया गया है।

ऊपर यह स्पष्ट किया गया है कि मुक्त छंद का समर्थक वा आधारलय ही है। स्वातंत्र्योत्तर काव्य में प्राय: लय-वैविध्य पर अधिक बल दिया है यद्यपि लय की समानता वाले छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। कहीं लय के अभाव में गद्यवत् छंदों का भी प्रयोग किया गया है। डा0 भारती जी के काव्य में तथाकथित लय-सम्बंधि सभी प्रकार के मुक्त छंदों का प्रयोग उपलब्ध होता है। सम लय की दृष्टि से 'ठण्डा लोहा' की 'ठण्डा लोहा' तथा 'सात गीत वर्ष' की 'गैरिक वाणी' कविता उद्धरणीय है।

(1) ठंडा लोहा। ठंडा लोहा। ठंडा लोहा। 8,8,8 मात्राएं
मेरी दुखती। हुई रगों पर। ठंडा लोहा। 8,8,8 ,,
मेरी स्वप्न भरी पलकों पर 8, 8 मात्राएं
मेरे गीत भरे होठों पर 8,8 मात्राएं
मेरी दर्द-भरी आत्मा पर 8,8 मात्राएं
स्वप्न नहीं अब 8 मात्राएं.
गीत नहीं अब 8 मात्राएं
दर्द नहीं अब 8 मात्राएं

1- We may therefore, formulate as follows, the ghost of some simple metre should lurk behind the arras in even the 'free' verse: T.S.Eliot, Selected prose, Page-90

मेरी साँसों । में यम केती । खे ने जे-सा 8,8,8 मात्राएं

कौन अड़ा है ? 8 मात्राएं

ठंडा लोहा । 8 मात्राएं

उपर्युक्त छंद में 8,8,8,8,8,8, के मात्रिक निपातों के क्रम से समलय प्रधान मुक्त छंद की सृष्टि हुई है। इसी प्रकार 'गैरिक वाणी' कविता में भी 8 मात्रा के निपात से मुक्त छंद कीयोजना कोदेखा जा सकता है, हां कहीं एकाध मात्रा के घट-बढ़ जानेसे उसमें लय-वैविध्य भी आ गया है। यथा-

गैरिक वसना 8 मात्राएं

अब विरागिनी 8 मात्राएं

मेरा निज दुख, मेरा निज सुख, 8,8 मात्रा

दोनों से तट । रथ रागिनी 8,6 मात्रा पर यति

मेरी वाणी[1] 8 मात्रा

इसी प्रकार लय-वैविध्य की दृष्टि से 'सात गीत वर्ष' की 'प्रमथ्यु गाथा', 'नया रस', 'फागुन के दिन की एक अनुभूति', 'निर्माण-योजना', 'बृहन्नला' तथा 'ठंडा-लोहा' की 'दूसरा पत्र', 'कविता की मौत', 'निराला के प्रति', 'बातचीत का टुकड़ा' और 'मेरी परछांहीं' आदि लम्बी कैचुअे आकार की कविताओं को लिया जा सकता है।

मुक्त छंद में अनुप्रास और तुक :

स्वातंत्र्योत्तर काव्य के मुक्त छंद में अनुप्रास और तुक या अन्त्यक्रम की समानता का भी प्रयोग किया गया है। डा0 भारती जी के काव्य को भी इस दृष्टि से देखा जा सकता है। भाव-संप्रेषण के लिए मध्यानुप्रास एवं अन्त्यानुप्रास दोनों के प्रयोग उनके काव्य में उपलब्ध होते हैं। इस दृष्टि से कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

---

1- सात गीत वर्ष- पृ0 46

(1) यह जो अकस्मात्
आज मेरे जिस्म के सितार के
एक एक तार में तुम झंकार उठे हो।[1]

(मध्य-तुक प्रयोग)

(2) जो जड़ों में रस बन कर खिंचता है
कोंपलों में फूटता है
पत्तों में हरियाता है
फूलों में खिलता है
फलों में गदरा आता है।[2]

(अन्त्यानुप्रास की आवृति)

इसी प्रकार 'सात गीत वर्ष' की 'ढीठ चांदनी' और 'एक छवि' कविताएं दृष्टव्य हैं।

कहीं-कहीं डा० भारती जी के काव्य में लय का अभाव होने से गद्यात्मक काव्य-भाषा का रूप भी दृष्टिगत होता है। किन्तु ऐसे स्थानों पर शब्दाधारित स्थूल व बहिर्गत लय न होकर प्रायः अर्थाधारित सूक्ष्म व आन्तरिक लय की अनुगूंज को देखा जा सकता है। 'कनुप्रिया' के अधिकांश छंद इसी प्रकार के हैं, जिनमें (Art of Music) की अपेक्षा (Art of reading) के महत्व पर विशेष बल दिया गया है। इसका एक उदाहरण लीजिए -

---

1- कनुप्रिया- (च.सं० 1972) पृ० 13

2- वही- पृ० 43

'कितनी बार जब तुमने अर्द्धोन्मीलित
कमल भेजा
तो मैं तुरन्त समझ गई कि तुमने मुझे
संझा बिरिया बुलाया है
कितनी बार तुमने जब बेले के फूल भेजे
तो मैं समझ गई कि तुम्हारी अंगुरियों ने
किसे याद किया है।[1]

ऊपर कथित न्यूनता के बावजूद भी जहां डा० भारती जी के काव्य में स्वतंत्रलय के आधार पर लयात्मक छंदों की रचनाएं मिलती हैं वहां उनमें गीति-तत्वों का अनायास ही समावेश देखा जा सकता है। ऐसी रचनाएं गीति-काव्य की दृष्टि से अपना महत्व बनाए रखती हैं। इस दृष्टि से डा० धर्मवीर भारती जी की 'ठंडा-लोहा' संग्रह की अधिकांश कविताएं बड़ी ही सरस व प्रभावोत्पादक गीति-रचनाएं हैं - जिनमें अनुभूति की वैयक्तिकता, आत्मलीनता, रागात्मक गहनता, मन:स्थिति की तरलता एवं भावान्विति आदि गेय तत्व विद्यमान हैं। इसी प्रकार 'सात गीत वर्ष' संग्रह भी स्वत: अपने नाम से यह सिद्ध करता है कि वह तथाकथित गीतों का आकलन है। इन गीतों की प्रकृति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अपने कैशोर्यपूर्ण रोमांस की प्रवृत्ति द्वारा डा० भारती जी ने छायावादोत्तर नव्य गीत को एक नया विकासात्मक मोड़ प्रदान किया है।

1- कनुप्रिया- पृ० 22